मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 147 ● वर्ष 15, अंक 11 ● फ़रवरी 2026 ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

# मज़दूर बिगुल

कोटद्वार में संघी उत्पात और फ़ासिस्टों को मुँहतोड़ जवाब 11

चार लेबर कोड के ख़िलाफ़ जारी अभियान की विस्तृत रिपोर्ट 5

यूजीसी विनियम, 2026 पर सही क्रान्तिकारी अवस्थिति क्या हो? 12

# 12 फ़रवरी की "हड़ताल" से मज़दूरों को क्या हासिल हुआ?

12 फ़रवरी को केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों ने मोदी सरकार के चार लेबर कोड के विरुद्ध एक दिन की आम हड़ताल का आह्वान किया था। लेकिन जो हुआ क्या उसे हड़ताल कहा जा सकता है? आम तौर पर कहें तो कतई नहीं। कई स्वतन्त्र व क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनों ने कई स्थानों पर अपने औद्योगिक क्षेत्र में कारखानों को वाकई बन्द करवाकर हड़ताल की। कुछ जगहों पर कुछ सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में भी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों से सम्बद्ध यूनियनों ने स्वायत्त व्यवहार करते हुए उस दिन काम बन्द रखा। लेकिन संगठित क्षेत्र के मज़दूरों में लाखों की सदस्यता का दावा करने के बावजूद केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों ने हड़ताल के नाम पर महज़ विरोध प्रदर्शन, विरोध मीटिंग, काली पट्टी बाँधकर काम करने जैसी कार्रवाइयाँ कीं। वास्तव में, आम तौर पर जो हुआ वह बाक़ायदा कोई हड़ताल थी ही नहीं।

**सबसे पहले यह समझना ज़रूरी है कि हड़ताल का अर्थ क्या होता है।** हड़ताल मज़दूर वर्ग के सबसे अहम हथियारों में से एक होता है। एक अकेले मज़दूर का पूँजीवादी समाज में कोई मूल्य नहीं होता है। लेकिन पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था और समूचा पूँजीपति वर्ग मज़दूर वर्ग के श्रम के शोषण पर ही आधारित होता है।

**सम्पादकीय अग्रलेख**

इसलिए एक वर्ग के तौर पर, मज़दूर वर्ग की सामूहिक शक्ति से बड़ी शक्ति और कोई नहीं। पूँजीपति वर्ग मज़दूर वर्ग के बेशी श्रम को निचोड़कर ही ज़िन्दा रहता है। उसके मुनाफ़े का स्रोत मज़दूरों की मेहनत होती है। समूचा समाज ही मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी के श्रम पर टिका होता है। ऐसे में, मज़दूर वर्ग यदि काम रोक दे तो मुनाफ़े का चक्का भी ठप्प हो जाता है। **हड़ताल का अर्थ होता है मज़दूर वर्ग द्वारा अपनी माँगों की पूर्ति के लिए काम रोकना, मुनाफ़े के चक्के को ठप्प करना और पूँजीपति वर्ग और उसकी राज्यसत्ता को बाध्य करना कि वह उसकी माँगों को पूरा करे।** क्या 12 फ़रवरी को केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों के नेतृत्व ने वाकई हड़ताल का आयोजन करवाया? आप सभी इस सवाल का जवाब जानते हैं। हर जगह पर हड़ताल के नाम पर एकदिनी रस्मी विरोध प्रदर्शन, जुलूस-जलसा कर दिया गया, ताकि मज़दूर वर्ग का बढ़ता असन्तोष कुछ हद तक निकल जाये।

**क्या इस रस्मी एकदिनी तथाकथित "हड़ताल" का मोदी सरकार पर कोई असर पड़ा? क्या मोदी सरकार ने इस पर कोई जवाब या बयान दिया? क्या केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों द्वारा भेजे गये चिन्ता के मुद्दों पर प्रधानमन्त्री या श्रम मन्त्री ने कोई उत्तर दिया?** नहीं। देंगे भी क्यों! वे भी समझ रहे हैं कि यह एक दिन की कवायद मात्र है जो उस एक दिन के बाद बीत जायेगी। यूँ भी सोचें तो क्या 1994 से लगभग हर साल होने वाली एक या दो दिन की रस्मी हड़तालों से मज़दूर वर्ग को कुछ हासिल हुआ है? क्या हम अनौपचारिकीकरण, ठेकाकरण, कैजुअलीकरण रोक पाये? क्या हम काम के बढ़ते घण्टे, घटती वास्तविक मज़दूरी, बुरे होते काम के हालात को बदल पाये? क्या इन रस्मी हड़तालों पर किसी भी सरकार ने हमारी सुनी? मोदी सरकार तो एक

(पेज 9 पर जारी)

# फ़ासिस्टों की गुण्डागर्दी के ख़िलाफ़ उठ खड़े होते आम लोग

पिछले 11 वर्षों से देशभर में संघ-भाजपा गिरोह के लोगों की मनमानी और गुण्डागर्दी चलती रही है। मुसलमानों, ईसाइयों, दलितों, स्त्रियों, आम ग़रीब आबादी और संघ-भाजपा के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने वाले छात्रों-युवाओं, प्रगतिशील लोगों पर हमले, मारपीट से लेकर बुलडोज़र चढ़ाने और मॉब लिंचिंग तक की इन्हें खुली छूट मिली हुई है।

लेकिन पिछले कुछ समय से माहौल बदल रहा है। जगह-जगह लोग इनकी गुण्डई के ख़िलाफ़ उठ खड़े हो रहे हैं और इन्हें दुम दबाकर भागना पड़ रहा है।

उत्तराखण्ड के कोटद्वार में "मोहम्मद" दीपक और उनके दोस्त विजय रावत एक बुज़ुर्ग मुस्लिम व्यापारी के साथ गुण्डई करने वाले बजरंग दलियों से भिड़ गये और उन्हें भगा दिया। इसके कुछ समय पहले नैनीताल में शैला नेगी नाम की युवती ने बलात्कार की घटना पर विरोध प्रदर्शन को साम्प्रदायिक रंग दे रही संघियों की भीड़ का अकेले सामना करके उनकी साज़िश को नाकाम कर दिया था। मथुरा में एक मुस्लिम हेडमास्टर के ख़िलाफ़ झूठे आरोप लगाकर उन्हें निलम्बित कराने वाले संघियों के विरुद्ध उस गाँव की तमाम हिन्दू आबादी एकजुट होकर हेडमास्टर के साथ खड़ी हुई और प्रशासन को उन्हें बहाल करना पड़ा।

इन घटनाओं का असर अब पूरे देश में देखा जा रहा है। वैलेण्टाइन्स डे पर बजरंग दल के गुण्डों को कई जगह आम युवाओं ने ही खदेड़ दिया। लखनऊ विश्वविद्यालय में रमज़ान के दौरान मुस्लिम छात्रों के नमाज़ और इफ़्तार पर प्रशासन ने रोक लगाने की कोशिश की तो सैकड़ों छात्र उनके साथ खड़े हो गये और उनके चारों ओर मानव श्रृंखला बनाकर खड़े रहे। राजस्थान में कम्बल बाँट रहे एक भाजपा नेता ने जब एक मुस्लिम महिला से कम्बल वापस छीन लिया, तो गाँव की तमाम हिन्दू महिलाओं ने अपने कम्बल उस नफ़रती नेता के मुँह पर फेंक दिये।

जैसा कि **भगतसिंह** ने अपने समय में कहा था, **"आज की तरुण पीढ़ी को जो मानसिक ग़ुलामी तथा धार्मिक रूढ़िवादी बन्धन जकड़े हैं, उससे छुटकारा पाने के लिए तरुण समाज की जो बेचैनी है, क्रान्तिकारी उसी में प्रगतिशीलता के अंकुर देख रहा है।"**

**राहुल सांकृत्यायन** ने कहा था, **"रूढ़ियों को लोग इसलिए मानते हैं, क्योंकि उनके सामने रूढ़ियों को तोड़ने वालों के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में नहीं हैं।"**

हमें पूरा भरोसा है कि फ़ासिस्ट गुण्डों को खदेड़ने के उदाहरणों की अब कमी नहीं रहेगी। ये महज़ अलग-अलग घटनाएँ नहीं रहेंगी बल्कि एक लहर बनेगी जो इस देश को नफ़रत और बँटवारे की आग में झोंक रहे संघियों को बहा ले जायेगी।

**बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!**

# पानीपत रिफ़ाइनरी के मज़दूरों की सभी जायज़ माँगों को पूरा करो!

**हर ज़ोर-ज़ुल्म की टक्कर में – संघर्ष हमारा नारा है!**

हरियाणा में पानीपत स्थित 'इण्डियन ऑयल कॉरपोरेशन' की रिफ़ाइनरी में काम करने वाले हज़ारों मज़दूरों को अमानवीय हालात से तंग आकर हड़ताल को मजबूर होना पड़ा। 23 फ़रवरी को रिफ़ाइनरी के विस्तार और निर्माण कार्य में लगे ठेका मज़दूरों ने अपनी जायज़ माँगों को लेकर बड़े पैमाने पर प्रदर्शन किया। यहाँ कार्यरत मज़दूर काम के घण्टे, ओवरटाइम, परिवहन व्यवस्था, शौचालय की सुविधा, ईएसआई-पीएफ़, कैण्टीन की सुविधा, सुरक्षा कर्मियों के ख़राब व्यवहार आदि जैसे मुद्दों को लम्बे समय से उठाते रहे थे।

लेकिन रिफ़ाइनरी प्रशासन ने इनकी माँगों पर कोई ध्यान नहीं दिया। इस असंवेदनशील रवैये से तंग आकर और दुर्घटना में दो मज़दूरों की मौत तथा एक के बुरी तरह घायल होने के बाद उनके सब्र का बाँध टूट गया। उन्होंने शान्तिपूर्ण प्रदर्शन और हड़ताल का रास्ता अपनाया, पर मैनेजमेंट के आदेश पर पुलिस और सीआईएसएफ़ के जवान मुस्तैदी के साथ मज़दूरों को कुचलने में जुट गये। लेकिन मज़दूरों के बुलन्द हौसलों को तोड़ने में नाकाम होने की स्थिति में "बातचीत" द्वारा समाधान निकालने की बात कही गयी।

हरियाणा के पानीपत में स्थित इस रिफ़ाइनरी की विभिन्न इकाइयों और विस्तार योजनाओं में 30 हज़ार से ज़्यादा मज़दूर-कर्मचारी काम करते हैं। इनमें से ज़्यादातर श्रमिक ठेकेदारों के तहत कार्यरत हैं। दमन और शोषण का सबसे ज़्यादा सामना इन्हीं ठेका श्रमिकों को करना पड़ता है। जानकारी के अनुसार यहाँ की कुल रिफ़ाइनिंग क्षमता लगभग 15 मिलियन टन प्रति वर्ष (एमटीपीए) तक पहुँच चुकी है लेकिन हज़ारों ठेका मज़दूर, जो इस रिफ़ाइनरी के निर्माण, रखरखाव और उत्पादन कार्यों में लगे हैं, आज अपने बुनियादी अधिकारों तक से महरूम हैं। यहाँ कार्यरत मज़दूरों के आरोप हैं कि उन पर 12-12 घण्टे काम कराने का दबाव बनाया जाता है, ओवरटाइम का सही भुगतान नहीं होता, वेतन में देरी होती है, ईएसआई-पीएफ़ जैसे अधिकार सही तरीक़े से नहीं मिलते और आवाज़ उठाने पर ठेकेदारों द्वारा काम से निकालने की धमकियाँ दी जाती हैं।

काम करने के हालात बेहद अमानवीय हैं। मज़दूरों को पीने का साफ़ पानी, शौचालय, परिवहन, कैण्टीन और पर्याप्त सुरक्षा उपकरण जैसी मूलभूत सुविधाएँ भी ठीक से नहीं मिलती हैं। रिफ़ाइनरी जैसे संवेदनशील और जोखिमपूर्ण कार्यस्थल पर इन अमानवीय हालात में मज़दूरों से काम लिया जाना सीधे तौर पर उनके जीवन के साथ खिलवाड़ है।

ध्यान रहे, मज़दूरों के ये हालात तो तब हैं जब मज़दूर-कर्मचारी विरोधी चार लेबर कोड अभी लागू नहीं हुए हैं। ये लेबर कोड लागू होने के बाद मज़दूरों की स्थिति का अन्दाज़ा सहज ही लगाया जा सकता है।

हम पानीपत रिफ़ाइनरी के मज़दूरों की सभी माँगों का पुरज़ोर समर्थन करते हैं। हम रिफ़ाइनरी प्रशासन और सरकार से माँग करते हैं मज़दूरों की सभी माँगों को तत्काल प्रभाव से पूरा किया जाये। मज़दूरों पर किसी भी तरह की बदले की या दमन की कार्रवाई को तत्काल रोका जाये।

बिगुल मज़दूर दस्ता और भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) इस लड़ाई में पानीपत रिफ़ाइनरी के मज़दूरों के साथ हैं और उन्होंने मज़दूरों की इन सभी माँगों को पूरा करने की माँग की है :

1. काम के घण्टे 8 हों और इन्हें सख़्ती से लागू किया जाये।
2. वेतन का भुगतान हर महीने की 1 से 7 तारीख के बीच पक्का किया जाये और 240 दिन पूरे होने पर पूरी देय राशि का भुगतान तुरन्त किया जाये।
3. कम्पनी के बोर्ड रेट के अनुसार वेतन दिया जाए और प्रॉविडेंट फ़ण्ड (PF) की रकम श्रमिक के बराबर और नियमित रूप से जमा की जाये।
4. ओवरटाइम का भुगतान डबल रेट से किया जाए।
5. काम के दौरान किसी भी दुर्घटना की स्थिति में कम्पनी पूरी ज़िम्मेदारी ले और उचित मुआवज़ा दे।
6. के.के.एस. से उठाये गये मज़दूर साथियों को तत्काल रिहा किया जाये।
7. सभी राष्ट्रीय अवकाश मजदूरों को दिये जायें।
8. मासिक ड्यूटी 26 कार्यदिवस तय की जाये।
9. कार्यस्थल पर शौचालय और स्वच्छ पेयजल की समुचित व्यवस्था की जाए।

**– बिगुल संवाददाता**

*"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन*

## 'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है

**यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।**
**बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।**
**सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।**

**प्रिय पाठको,**

**अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।**

**मनीऑर्डर के लिए पता :**
**मज़दूर बिगुल,**
**द्वारा जनचेतना,**
**डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

**बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul**
**खाता संख्या : 0762002109003787,**
**IFSC: PUNB0185400**
**पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ**

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

**मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :**
**फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)**
**ईमेल : bigulakhbar@gmail.com**
**फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul**

### मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
### www.mazdoorbigul.net

**इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है। आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं : www.facebook.com/MazdoorBigul**

**अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339**

### 'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

**1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।**

**2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।**

**3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।**

**4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।**

**5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।**


### मज़दूर बिगुल

| | |
|---|---|
| सम्पादकीय कार्यालय | : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016 फ़ोन: 8853476339 |
| दिल्ली सम्पर्क | : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250 |
| ईमेल | : bigulakhbar@gmail.com |
| मूल्य | : एक प्रति – 10/- रुपये<br>वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित)<br>आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये |

# मालिकों के मुनाफ़े की हवस ले रही मज़दूरों की जान!

**● भारत**

पिछले कुछ दिनों के दौरान देश में कई कारख़ानों में जानलेवा औद्योगिक हादसे हुए हैं। इन हादसों ने एक बार फिर दिखा दिया है कि इस मुनाफ़ाखोर व्यवस्था के लिए मज़दूरों की जान की क़ीमत क्या हो सकती है। आइए ऐसे कुछ प्रातिनिधिक हादसों के आँकड़े देखें:

~ 26 जनवरी को कोलकाता के आनन्दपुर इलाके में वाउ मोमो और पुष्पांजलि डेकोरेटर्स के गोदामों में आग लग गयी। इसमें कुल 27 मज़दूरों के मारे जाने की पुष्टि हो चुकी है। 25 अन्य मज़दूर अभी तक लापता हैं।

~ 16 फ़रवरी (2026) को भिवाड़ी के खुशखेड़ा-करौली औद्योगिक क्षेत्र (राजस्थान) की एक अवैध पटाखा फैक्ट्री में भयंकर हादसा हुआ। घटना के समय क़रीब 25 मज़दूर काम कर रहे थे, जिनमें 9 मज़दूरों के ज़िन्दा जल जाने और 4 मज़दूरों के गम्भीर रूप से घायल हो जाने की ख़बर है।

~ 16 फ़रवरी को फ़रीदाबाद के मुजेसर औद्योगिक क्षेत्र में एक केमिकल फैक्ट्री में शॉर्ट सर्किट के कारण धमाका हुआ और आग लग गयी। इसमें 42 लोग झुलस गये, जिनमें से 10 की हालत गम्भीर है।

~ 16 फ़रवरी को ही छत्तीसगढ़ के राजनन्दगाँव ज़िले के जालबाँधा क्षेत्र में स्थित मोहंदी की जया केमिकल फैक्ट्री में अचानक भीषण आग लग गयी। अभी तक किसी के हताहत होने की आधिकारिक पुष्टि नहीं हुई है।

यह सब महज़ दुर्घटनाएँ नहीं, बल्कि मालिकों व इस पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा की जाने वाली निर्मम हत्याएँ हैं। आये-दिन जानवरों की तरह कारख़ानों में मज़दूरों को मरने के लिए पूँजीपति मजबूर करते हैं। हर क्षेत्र में मज़दूरों की जान की क़ीमत कीड़े-मकौड़ो से अधिक नहीं है। ज़्यादातर मसलों में दुर्घटना के बाद मालिक मज़दूर को साँठ-गाँठ करके किसी निजी अस्पताल या चिकित्सक के पास ले जाता है, ताकि मामला दर्ज ही न हो! किसी भी क्षेत्र में सबसे ख़तरनाक काम प्रवासी मज़दूरों के हिस्से आता है। प्रवासी, ग़रीब और दलित मज़दूर ही सबसे ज़्यादा अरक्षित होते हैं। उन्हें चोट लगने या मौत होने तक की स्थिति में मालिक पक्ष को बचने में ज़्यादा आसानी होती है। बाक़ी की कसर पूँजी की ताक़त पूरी कर देती है जो पुलिस प्रशासन से लेकर श्रम विभाग तक को मालिकों के पक्ष में काम करने का पूरा इन्तज़ाम कर देती है।

श्रम मन्त्रालय की एक रिपोर्ट बताती है कि बीते पाँच वर्षो में 6500 मज़दूर फैक्ट्री, खदानों, निर्माण कार्य में हुए हादसों में अपनी जान गवाँ चुके हैं। इसमें से 80 प्रतिशत हादसे कारखानों में हुए। 2017-2018 कारखाने में होने वाली मौतों में 20 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। साल 2017 और 2020 के बीच, भारत के पंजीकृत कारखानों में दुर्घटनाओं के कारण हर दिन औसतन तीन मज़दूरों की मौत हुई और 11 घायल हुए। 2018 और 2020 के बीच कम से कम 3,331 मौतें दर्ज की गयीं। आँकड़ों के मुताबिक, साल 2010 से 2020 के बीच फैक्ट्री अधिनियम, 1948 की धारा 92 (अपराधों के लिए सामान्य दण्ड) और 96ए (ख़तरनाक प्रक्रिया से सम्बन्धित प्रावधानों के उल्लंघन के लिए दण्ड) के तहत 14,710 लोगों को दोषी ठहराया गया, लेकिन आँकड़ों से पता चलता है कि 2018 और 2020 के बीच सिर्फ़ 14 लोगों को फैक्ट्री अधिनियम, 1948 के तहत अपराधों के लिए सज़ा दी गयी। यह आँकड़े सिर्फ़ पंजीकृत फैक्ट्रियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि देश में लगभग 90 फ़ीसदी श्रमिक अनौपचारिक क्षेत्र से जुड़े हैं और अनौपचारिक क्षेत्र में होने वाले हादसों के बारे में कोई पुख़्ता आँकड़े नहीं हैं।

वहीं पंजीकृत कारख़ानों के उपलब्ध DGFASLI (महानिदेशालय, कारख़ाना सलाह सेवा और श्रम संस्थान, जो कि भारत सरकार के श्रम और रोजगार मन्त्रालय के अन्तर्गत काम करने वाला एक प्रमुख संगठन है) डेटा के अनुसार, 2020 में भारत में 363,442 पंजीकृत कारख़ाने थे, जिनमें से 84 फीसदी चालू अवस्था में थे और उनमें तक़रीबन 2 करोड़ कर्मचारी काम कर रहे थे। DGFASLI के आँकड़े बताते हैं कि 2020 तक पहले के चार सालों में हर साल पंजीकृत कारख़ानों में औसतन 1,109 मज़दूरों की मौतें हुईं और 4,000 से ज़्यादा लोगों को चोटें आयीं। देश में कारख़ानों में सबसे अधिक मौतें गुजरात में हुई हैं। चार साल के दौरान फैक्ट्री में होने वाली पाँच में से एक से ज़्यादा मौतें और घायल होने की घटनाएँ गुजरात में हुई हैं। DGFASLI के आँकड़ों के अनुसार, 2019 में गुजरात में कारख़ानों में सबसे अधिक 79 मज़दूरों की मौत हुई और 192 मज़दूर घायल हुए। इसी 'गुजरात मॉडल' को भाजपा और मोदी देश भर में लागू करने की बात करते हैं, जो मज़दूरों के लिए क़ब्रगाह है। गुजरात ही वह राज्य है, जहाँ सबसे पहले श्रम क़ानूनों को ख़त्म किया गया था। याद कीजिए इसी 'गुजरात मॉडल' का झुनझुना मोदी और भाजपा 2014 में सबको पकड़ा रहे थे।

आख़िर क्यों देश के कारख़ानों में लगातार आग लगती रहती है और मज़दूर मरते रहते हैं? क्यों इसपर कोई कार्रवाई नहीं होती? ज़वाब साफ़ है! आज पूरे देश के कारख़ानों में सुरक्षा के कोई इन्तज़ाम नहीं हैं। मज़दूरों की मौत के ज़िम्मेदार कोई और नहीं बल्कि फैक्टरी मालिक और उनके चन्दे से चलने वाली पूँजीवादी पार्टियों की सरकारें हैं। मालिकों द्वारा हर रोज़ अपने मुनाफ़े की हवस को पूरा करने के लिए मज़दूरों की जान को जोख़िम में डाला जाता है। सस्ते श्रम के तौर पर महिलाओं को काम पर लगाया जाता है और निर्मम परिस्थितियों में काम करा कर मालिक अपना मुनाफ़ा पीटते हैं। इन्हीं मालिकों, पूँजीपतियों के पैसे से तमाम चुनावबाज़ पार्टियाँ चुनाव लड़ती हैं। वे ही इस हत्या, लूट और शोषण को क़ानूनी जामा पहनाते हैं, जिसकी वजह से ये घटनाएँ आम होती जा रहीं हैं। इन मौतों पर मगरमच्छ के आँसू बहाने वाली तमाम पार्टियों के हुक्मरान ही असल में इन घटनाओं को प्रश्रय देते हैं। उनके लिए मज़दूरों की मौत महज़ एक संख्या है। सभी पार्टियों के बहुत से मन्त्री स्वयं कारखाना-मालिक हैं और किसी श्रम क़ानून को लागू नहीं करते, मज़दूरों को कोई सुरक्षा उपकरण नहीं देते हैं। तमाम अवैध कारखानों से लेकर फैक्ट्रियों में सुरक्षा इन्तज़ामों की कमी पर सब चुप्पी साधे रहते हैं! ऐसा क्यों? क्योंकि इनमें से तमाम फैक्ट्री कारखानों के मालिक भाजपा या अन्य किसी पार्टी के नेता या उसके समर्थक ही हैं। इन्हीं पार्टियों के ज़्यादातर नेता-मन्त्री ख़ुद ही कारखाने चलवाते हैं, उन्हें लाइसेंस दिलवाते हैं। देश के 28 करोड़ मज़दूर कारखानों में रोज़ जान हथेली पर रखकर इन मालिकों की तिजोरियाँ भरते हैं।

इतनी खराब स्थिति के पहले से ही मौजूद होने के बावजूद मौजूदा भाजपा सरकार 'चार लेबर कोड' लागू कर रही है जो इस स्थिति की भयंकरता को और ज़्यादा भयंकर बना देगा। निश्चित ही जो श्रम क़ानून पहले मौजूद थे वे भी आम तौर पर सिर्फ़ काग़ज़ों की ही शोभा बढ़ा रहे थे। देश के 93 फ़ीसदी असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के लिए ये श्रम क़ानून लागू नहीं होते थे, लेकिन जब कभी भी कहीं मज़दूर अपने क़ानूनी हक़ के

लिए संगठित होकर संघर्ष करते थे तो मजबूरन पूँजीपतियों और सरकारों को उसे लागू करवाना पड़ता था। लेकिन अब मोदी-शाह की फ़ासीवादी मज़दूर-विरोधी सरकार पुराने क़ानूनों को भी चार लेबर कोड के ज़रिये ख़त्म कर चुकी है। चार लेबर कोड के ज़रिये कम्पनियों को सुरक्षा के इन्तज़ाम लागू करने से बचने के लिए खुली छूट दी गयी है।

ओ.एच.एस कोड, 2020 में मज़दूरों की सुरक्षा के साथ और ज़्यादा खिलवाड़ किया गया है। इसमें सुरक्षा समिति बनाये जाने को सरकार के विवेक पर छोड़ दिया गया है, जो पहले कारख़ाना अधिनियम, 1948 के हिसाब से अनिवार्य था। इस पुराने क़ानून में स्पष्ट किया गया था कि मज़दूर अधिकतम कितने रासायनिक और विषैले माहौल में काम कर सकते हैं, जबकि नये कोड में रासायनिक और विषैले पदार्थों की मात्रा का साफ़-साफ़ ज़िक्र करने के बजाय उसे निर्धारित करने का काम राज्य सरकारों के ऊपर छोड़ दिया गया है। ओएचएस संहिता केवल उन्हीं कारख़ानों में लागू होगी, जहाँ 20 या ज़्यादा मज़दूर काम करते हो (बिजली का प्रयोग हो) या 40 या ज़्यादा मज़दूर जहाँ काम करते हो (बिजली का प्रयोग न हो)। 2017-18 के ऐनुअल सर्वे आफ़ इण्डस्ट्री के अनुसार 47.1 प्रतिशत कारख़ाने ऐसे हैं, जहाँ 20 तक मज़दूर काम करते हैं। 33.8 प्रतिशत कारख़ानों में 20-99 मज़दूर काम करते हैं। इसके अनुसार देखा जाये तो मज़दूरों की बड़ी आबादी इस क़ानून के दायरे से बाहर हो जायेगी। यानी इन नरभक्षी फ़ासीवादियों ने ही संसद में श्रम क़ानूनों को ख़त्म करने का काम किया है जिससे भविष्य में इस तरह की घटनाओं को बिना क़ानूनी पचड़े के अंजाम दिया जा सके।

मुनाफ़े पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था और इसके ताबेदारों के लिए मज़दूरों की जान की क्या क़ीमत है- यह उपरोक्त विवरणों से साफ़ पता चलता है। हर दिन कई दुर्घटनाएँ होती हैं, ज़्यादातर दबा दी ज़ाती हैं और सामने नहीं आ पाती हैं। जो सामने आ पाती हैं, वे श्रम विभाग के रहमोकरम पर रहती हैं और श्रम विभाग का पट्टा किसके हाथ में है, यह सभी लोग जानते हैं! आज मज़दूरों पर पूँजी की मार बदस्तूर बढ़ती जा रही है। सैकड़ों मज़दूरों की क़ुर्बानियों ने ही आज के मौजूदा श्रम क़ानून दिये थे। भले ही ये क़ानून ज़्यादतर मज़दूर आबादी के लिए काग़ज़ी ही बने रहे, लेकिन तब भी मोदी सरकार द्वारा इन क़ानूनों को ख़त्म करने की साज़िश को हमें समझना होगा। हमें समझना होगा कि 'एक पर हमला, सबपर हमला'! आज हमारे सामने न केवल श्रम क़ानूनों के अधिकारों को हासिल करने, उन्हें लागू करवाने का सवाल उपस्थित है, बल्कि मुनाफ़ाखोर पूँजीवादी व्यवस्था के ख़ात्मे का सवाल भी हमसे रूबरू है। अगर आज हम संगठित नहीं हुए तो वह दिन दूर नही जब यही मालिक अपने मुनाफ़े के लिए मज़दूरों को क़ानूनन आग की भट्टी में झोंक देंगे और सरकार खुल कर मालिकों का साथ देगी और आने वाली पीढ़ियाँ 'ग़ुलामी के ज़जीरों' में बँधकर काम करने के लिए मजबूर होंगी। हमें आज से ही इस मुनाफ़े के मकड़जाल से निकलने के लिए पुरज़ोर आवाज़ उठानी होगी, अपने इलाक़े व सेक्टर के आधार पर यूनियन और संगठन बनाने होंगे। हमारे हालात को बदलने का एकमात्र हथियार हमारी एकजुटता ही है।

## कोलकाता में वाउ मोमो और पुष्पांजलि डेकोरेटर्स के गोदामों में आग से झुलसकर हुई मज़दूरों की मौत

# यह हादसा नहीं, मुनाफ़े के तन्त्र के हाथों एक सामूहिक हत्याकाण्ड है!

## इस पूँजीवादी तन्त्र को उखाड़ फेंकना ही एकमात्र विकल्प!

**● शिशिर**

इस साल जब देशभर के सभी सरकारी महकमे इस 'गणतन्त्र' के जश्न में गणतन्त्र दिवस मनाने की तैयारियाँ पूरी करके 25-26 जनवरी की रात को गहरी नींद सो रहे थे, उसी वक़्त तड़के 3 बजे कोलकाता के आनन्दपुर इलाके में वाउ मोमो और पुष्पांजलि डेकोरेटर्स के गोदामों में 52 मज़दूर आग में झुलस जलकर राख हो रहे थे। इस वारदात में अभी तक कुल 27 मज़दूरों के मारे जाने की पुष्टि हो चुकी है। 25 अन्य मज़दूर अभी भी लापता हैं, यानी उनके झुलसे हुए शरीर के टुकड़ों को खोजने में पुलिस और अग्निशमन विभाग नाकाम रहे हैं। इस पर मुख्यधारा की मीडिया का रुख़ देखिये! धर्म के नाम पर लोगों के बीच फ़साद कराने वाली गोदी मीडिया की तो बात ही छोड़िए, 'द हिन्दू' जैसे उदार समाचार पोर्टलों ने भी शुरुआती कुछ दिनों की गहमागहमी के बाद इस ख़बर को जगह देना बन्द कर दिया है।

वाउ मोमो ने दावा किया है कि उनके गोदाम में आग से सुरक्षा के सारे नियमों का पालन किया जा रहा था, मगर हक़ीक़त यह है कि उनका गोदाम पैकेजिंग मटीरियल जैसी आसानी से आग पकड़ने वाली चीज़ों से भरा हुआ था। इसी तरह पुष्पांजलि डेकोरेटर्स के गोदाम में भी इंटीरियर डिज़ाइन से जुड़े ढेरों ज्वलनशील सामान, जैसे कि लकड़ी के पैलेट, प्री-फ़ैब्रिकेटेड दीवार, थर्माकोल, मेटल शीट्स इत्यादि रखे हुए थे। इसके अलावा, स्थानीय लोगों के मुताबिक़ ये ढाँचे आर्द्रभूमि (वेटलैण्ड) को भरकर बनाये गये हैं। आर्द्रभूमियों पर बने ढाँचे संरचनागत रूप से कमज़ोर हो सकते हैं और आग लगने की हालत में सापेक्षतः जल्दी ढह सकते हैं और साथ ही, भराई के दौरान उनमें बेहद ज्वलनशील मीथेन गैस फँसी हो सकती है जो आग लगने की सूरत में बाहर आने पर आग को और फैला सकती है। कहने को तो क़ानून के हिसाब से कोलकाता में आर्द्रभूमियों पर निर्माण कार्य वर्जित है, लेकिन ये खुला रहस्य है कि बिल्डरों और गोदाम मालिकों जैसे धनपशुओं, नौकरशाही और पूँजीवादी राजनीतिक दलों की मिलीभगत से ऐसे नियमों की आये दिन धज्जियाँ कैसे उड़ती रहती हैं।

ऐसा हादसा पहली बार नहीं हुआ है और अफ़सोस कि पूँजीवाद के रहते यह आख़िरी भी नहीं है। पूरे देश के किसी भी शहर को लिया जाये, ऐसे "हादसे" होते ही रहते हैं। अकेले दिल्ली में ही वित्तीय वर्ष 2024-25 के लिए अग्निशमन विभाग द्वारा प्रस्तुत किये गये विश्लेषण के हिसाब से दुकानों, गोदामों और शोरूमों जैसी कारोबारी जगहों पर आग लगने की 693 घटनाएँ हुई और औद्योगिक जगहों पर इसी अवधि में आगजनी के 450 हादसे हुए। यानी, इस अवधि में काम करने की जगहों पर दिल्ली में हर दिन औसतन 3 आगजनी की घटनाएँ हुईं। कोलकाता में ही इससे पहले स्टीफ़न कोर्ट और एएमआरआई अस्पताल में आग लगने से क्रमशः 89 और 43 लोग मारे जा चुके हैं। क्या उन घटनाओं से प्रशासन को सीख लेकर सभी गोदामों और कारखानों इत्यादि की नियमित जाँच का इंतज़ाम नहीं करना चाहिए था? मगर पूँजीपतियों की सेवा में जी जान से जुटी सरकारें और उनकी नौकरशाही से ऐसी उम्मीद करना बेमानी होगी। सभी जानते हैं कि हमारे देश में मज़दूरों के लिए जैसे-तैसे, यहाँ तक कि ज्वलनशील सामान के बीच सोने का इंतज़ाम किया जाना आम बात है, क्योंकि पूँजीवाद में वे सिर्फ़ मशीनों के ही कलपुर्जे की तरह होते हैं और उनकी अहमियत सिर्फ़ उनकी श्रम शक्ति को निचोड़कर मुनाफ़ा बनाये जाने तक सीमित होती है। यही वजह है कि इस "हादसे" के बाद पूरे मामले से पल्ला झाड़ने के लिए पूरा पूँजीवादी तन्त्र हरक़त में आ चुका है और कामगारों के परिवारों समेत आम लोगों के गुस्से को फ़ौरी तौर पर शान्त करने के लिए राज्य एवं केन्द्र सरकारों ने मृतकों के परिवारजनों के लिए राहत पैकेज की घोषणा की है और दोनों गोदामों के मालिक, गंगाधर दास को और वाउ मोमो के दो अधिकारियों को गिरफ़्तार किया गया है और एक विशेष जाँच समिति बैठायी गयी है। मगर सवाल उठता है कि पुलिस तीन हफ़्ते से ज़्यादा का समय बीत जाने पर भी सिर्फ़ तीन लोगों को ही गिरफ़्तार क्यों कर पायी है? क्या यह स्पष्ट नहीं है कि वाउ मोमो के मालिक को और उस इलाके की देखरेख का ज़िम्मा सँभालने वाले श्रम विभाग के अधिकारियों को भी फ़ौरन गिरफ़्तार करके उनपर सख़्त से सख़्त धाराएँ लगानी चाहिए थी?

मज़दूर वर्ग अपने तजुर्बे से जानता है कि अभी तक की जो भी सीमित कार्रवाई हुई है, वो सबकुछ बस दिखाने के लिए है। पश्चिम बंगाल में मुख्य विरोधी दल, भाजपा भी मौका भुनाने के लिए विरोध कर रही है, लेकिन तृणमूल कांग्रेस और भाजपा की ये कुत्ताघसीटी सिर्फ़ पूँजीवादी चुनाव प्रणाली में अपनी रोटियाँ सेंकने के लिए है। मज़दूरों का खून पसीना नोचने के सवाल पर इन सारे के सारे दलों में आम सहमति है। अभी-अभी 16 फ़रवरी को भाजपा-शासित राजस्थान के भिवाड़ी में पटाखे बनाने वाले कारख़ाने में हुए विस्फोट के बाद लगी आग में कम से कम 8 मज़दूर झुलसकर मौत का शिकार हो गए। इसलिए मज़दूर वर्ग ममता बनर्जी और सुवेंदु आधिकारी के घड़ियाली आँसुओं में नहीं फँसने वाला। जहाँ तक मज़दूरों के प्रति रवैये और पूँजीपति वर्ग के हितों की हिफ़ाज़त का सवाल है तो तमाम पूँजीवादी दल एक ही थाली के चट्टे-बट्टे हैं। भारत में ऐसे "हादसे" इतनी बड़ी तादाद में आये दिन होते रहते हैं कि इन्हें एक हादसा कहा जाना सरासर ग़लत है, बल्कि इन्हें साफ़ तौर पर सामूहिक हत्याकाण्ड ही कहा जाना चाहिए।

ऐसी वारदातों से बचने व निपटने के लिए पहले जो थोड़े-बहुत क़ानून थे उनका भी क्रियान्वयन विरले ही होता था। लेकिन केन्द्र में सत्तारूढ़ भाजपा द्वारा पारित की गयी और 1 अप्रैल से लागू होने जा रही चार श्रम संहिताओं में से 'व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कार्य स्थितियाँ संहिता, 2020' में तो आगजनी से निपटने से जुड़े सारे प्रावधान सरकार द्वारा जारी अधिसूचनाओं पर छोड़ दिये गये हैं, यानी मज़दूर वर्ग के पास वैधानिक अधिकार नहीं होंगे, बल्कि वह पूँजीपति वर्ग की मैनेजमेण्ट कमेटी, यानी पूँजीवादी सरकारों के रहमोकरम पर निर्भर होगा। दरअसल फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा लायी जा रही ये चारों श्रम संहिताएँ मज़दूर वर्ग पर अब तक का सबसे बड़ा हमला है। इसलिए आज हमारे तात्कालिक संघर्ष का एक मुख्य कार्यभार संगठित होकर इन मज़दूर-विरोधी क़ानूनों का विरोध करना भी है।

इसके साथ ही हम तात्कालिक तौर पर बंगाल सरकार से माँग करते हैं कि वह इस सामूहिक हत्याकाण्ड के लिए ज़िम्मेदार पूँजीपतियों के ऊपर द्रुत गति से कार्रवाई करते हुए उन्हें सख़्त से सख़्त सज़ा दिलवाये, मज़दूरों के परिवारजन को नागरिक स्वयंसवेक का झुनझुना देने के बजाय उन्हें एक पक्की नौकरी दे, जाँच करके पर्यावरणीय रूप से संवेदनशील आर्द्रभूमि पर गोदाम बनाने की मिलीभगत में शामिल मालिकों, अधिकारियों, मन्त्रियों इत्यादि पर सख़्त से सख़्त कार्रवाई की जाये, और केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा मुआवज़े की रक़म कुल 12 लाख (राज्य व केन्द्र की ओर से क्रमशः 10 लाख और 2 लाख) से बढ़ाकर आने वाले दशकों की अपेक्षित महँगाई दर को ध्यान में रखते हुए उनके आजीवन सम्मानजनक गुज़ारे के हिसाब से की जाये। समूचे मज़दूर एवं कर्मचारी वर्ग से हमारा आह्वान है कि हम फ़ौरी तौर पर चारों श्रम संहिताओं को वापस करवाने के संघर्ष के लिए एकजुट हों और इस समूचे पूँजीवादी तन्त्र को नेस्तनाबूद करने की दीर्घकालिक लड़ाई के लिए भी कमर कस लें।

# फ़ासिस्ट मोदी के राज में नफ़रती हिंसा और अपराध चरम पर

**● आशीष**

फ़ासिस्ट मोदी सरकार के राज में साम्प्रदायिक एवं नफ़रती अपराध को अंजाम देने वाले अपराधियों का मनोबल सातवें आसमान पर पहुँच गया है। नस्ल, क्षेत्रीय पहचान या धर्म के आधार पर नफ़रत के मामले हमारे देश में लगातार तेज़ी से बढ़ रहे हैं। इसकी चपेट में आये दिन अक्सर प्रवासी मज़दूर, मुस्लिम, दलित, आदिवासी, उत्तर भारत में ऊनी कपड़े बेचने आये कश्मीरी एवं उत्तर पूर्व के राज्यों की आबादी आदि आती रहती है।

पिछले दिनों देहरादून से एक दुखद घटना सामने आयी। उत्तराखण्ड की राजधानी देहरादून में विगत 9 दिसम्बर को त्रिपुरा का रहने वाला एक छात्र एंजेल चकमा और उसके भाई माइकल चकमा के ऊपर कुछ लोगों के एक समूह द्वारा नस्लभेदी टिप्पणी की गयी। दोनों भाइयों ने इस उपहास का विरोध किया। इसके बाद उन दोनों के साथ बर्बर तरीक़े से मारपीट की गयी। हमले में एंजेल के ऊपर धारदार हथियार से वार किया गया। नाज़ुक हालत में उसे स्थानीय अस्पताल में भर्ती कराया गया, जहाँ इलाज के दौरान घटना के 17 दिन बाद उसकी मौत हो गयी। इस मामले में पुलिस-प्रशासन ने पर्याप्त लापरवाही बरती। एफ़आईआर दर्ज करने में देरी की गयी। यह घटना जब सुर्ख़ियों में आयी तब केस दर्ज करके कुछ आरोपियों को गिरफ़्तार किया गया, लेकिन अभी भी उनमें से एक आरोपी फ़रार है। उत्तराखण्ड के मुख्यमन्त्री पुष्कर सिंह धामी पीड़ित के पिता से फोन पर बात करने का वीडियो सोशल मीडिया पर डालकर न्याय दिलाने की नौटंकी करने लगे। पुलिस के एक अधिकारी मृतक के भाई को ही झूठा बताने लगे। उक्त पुलिस अधिकारी का कहना है कि इस घटना में नस्ल के आधार पर नफ़रत एवं हिंसा का कोई कोण नहीं है। मृतक के भाई माइकल चकमा का कहना कि उन्हें "चाइनीज़", "मोमो", आदि जैसे शब्दों के ज़रिये अपमानित किया गया। चकमा भाइयों ने हमलावरों को बताया कि उनके पिता सीमा सुरक्षा बल (बीएसएफ़) में एक हेड कांस्टेबल है, वह चाइनीज़ नहीं बल्कि भारतीय है, हमलावरों ने उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया।

विगत 17 दिसम्बर को बांग्लादेशी होने के शक के आधार पर केरल के पलक्कड़ ज़िले में छत्तीसगढ़ के एक प्रवासी मज़दूर रामनारायण बघेल की एक भीड़ ने पीट-पीटकर हत्या कर दी। इसी तरह बांग्लादेशी होने के शक के आधार पर ही विगत 24 दिसम्बर को ओडिशा में पश्चिम बंगाल के एक प्रवासी मज़दूर जुएल को पीट-पीटकर मार डाला। मॉब लिंचिंग की इस घटना में दो अन्य मज़दूर भी बुरी तरह घायल हो गये थे।

क्रिसमस के अवसर पर देश में कई जगहों पर ईसाइयों पर हमले किये गये। देश के कई हिस्सों में चर्च के सामने आरएसएस के अनुषंगी संगठन विश्व हिन्दू परिषद एवं बजरंग दल ने हनुमान चालीसा का पाठ किया और उन्मादी नारे लगाये। इस उन्मादी भीड़ ने कई जगहों पर तोड़फोड़ मचाया एवं लोगों के ऊपर हमले भी किये। केरल के पलक्कड़ में भी क्रिसमस के गीत गाने वाले ग्रुप पर हमला करने के आरोप में पुलिस ने आरएसएस-बीजेपी कार्यकर्ता अश्विन राज को गिरफ़्तार किया। इन लोगों ने गीत गाने वाले बच्चों पर हमला भी किया और उनके बाजे भी तोड़ दिये।

विगत 27 दिसम्बर को शिवांगी नाम की एक छात्रा अपने दोस्तों के साथ बरेली के एक रेस्टोरेंट में जन्मदिन की पार्टी मनी रही थी। इस पार्टी में शिवांगी के दो मुस्लिम युवक दोस्त भी शामिल थे। बजरंग दल के कार्यकर्ताओं ने इसी को 'लव जिहाद' का फर्जी मसला बनाकर शिवांगी और उनके दोस्तों के ऊपर हमला कर दिया और रेस्टोरेंट में जमकर तोड़फोड़ मचाई।

उत्तराखण्ड के काशीपुर में बजरंग दल से जुड़े छह कार्यकर्ताओं ने कश्मीरी शॉल विक्रेता बिलाल अहमद गनी को 'भारत माता की जय' बोलने के लिए मजबूर किया और 'भारत माता की जय' बोलने के बावजूद बर्बरता पूर्वक उसकी पिटाई की। इस मामले में पुलिस ने बजरंग दल के कार्यकर्ता को गिरफ़्तार किया। इस घटना के कुछ दिन पहले ही हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा ज़िले के देहरा क्षेत्र में भी एक कश्मीरी शॉल विक्रेता को एक फ़ासीवादी गुण्डा गिरोह ने 'भारत माता की जय' के नारे लगाने के लिए मजबूर करने की कोशिश की थी। उस विक्रेता ने नारे लगाने से इनकार किया था। इसी प्रकार हरियाणा के कैथल और फतेहाबाद में कश्मीरी शॉल विक्रेताओं के साथ उत्पीड़न की घटना सामने आयीं। ज्ञात हो कि भारत के कई शहरी इलाक़ों में कश्मीरी शॉल विक्रेताओं का अपना सामान लेकर पूरे देश में घूम-घूमकर बिक्री करना दशकों से जारी रहा है और भाजपा और संघ परिवार की फ़ासीवादी नफ़रत और हिंसा के हावी होने के पहले ऐसी घटनाएँ बिरले ही सुनने में आती थीं। लेकिन देश में बढ़ते नफ़रत भरे माहौल के बीच हाल के वर्षों में उन पर हमलों की घटनाएँ सामने आने लगी हैं।

मोदी राज में गोमांस के निर्यात में भारत पूरे दुनिया में दूसरे स्थान पर है

**(पेज 15 पर जारी)**

### मोदी सरकार द्वारा लाये गये चार लेबर कोड और वीबी-ग्रामजी क़ानून के ख़िलाफ़ चलाये जा रहे अभियान को मिल रहा व्यापक जनसमर्थन!

# मज़दूरों-कर्मचारियों के हक़ों पर हुए इस हमले के ख़िलाफ़ अनिश्चितकालीन आम हड़ताल ही संघर्ष का एकमात्र कारगर रास्ता है!

लेबर कोड के काले क़ानून के विरुद्ध देश के कई राज्यों में 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' (RWPI), 'बिगुल मज़दूर दस्ता', कई क्रान्तिकारी यूनियनों व अन्य जन संगठनों द्वारा पिछले तीन महीने से निरन्तर सघन अभियान चलाया जा रहा है। यह अभियान असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के साथ-साथ संगठित क्षेत्र के मज़दूरों-कर्मचारियों के बीच भी चलाया जा रहा है। दिल्ली, कलकत्ता, पटना, चण्डीगढ़, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, हरियाणा, उत्तराखण्ड, तेलंगाना और आन्ध्र प्रदेश के कई ज़िलों में चलाये जा रहे इस अभियान को लोगों ने सराहा और अपना समर्थन दिया है। मालूम हो कि चार लेबर कोड व वीबी-ग्रामजी क़ानून फ़ासिस्ट मोदी सरकार द्वारा देश के करोड़ों शहरी-ग्रामीण मज़दूरों-कर्मचारियों के अधिकारों पर अब तक का सबसे बड़ा हमला है।

इस दौरान रेलवे, सड़क परिवहन, बन्दरगाह, दूरसंचार, डाक, बीएसएनएल, भेल, बिजली, बैंक, बीमा, पीडब्लूडी जैसे विभागों में काम करने वाले कर्मचारियों और कारख़ानों के संगठित तथा असंगठित मज़दूरों से लेबर कोड की असलियत पर बात की गयी। इस अभियान के तहत लाखों की संख्या में पर्चे बाँटे गये हैं। कार्यस्थल पर लोगों से बातचीत के अलावा नुक्कड़ सभाओं, गीत, नाटक, पोस्टर्स आदि माध्यमों के ज़रिये लेबर कोड लागू करने की मोदी सरकार की असल मंशा को विस्तार से बताया गया है। साथ ही सोशल मीडिया के ज़रिए भी लगातार लोगों तक यह बात पहुँचाई जा रही है।

अलग-अलग विभागों में कार्यरत पक्के कर्मचारियों की तरफ़ से यह बात हर जगह ही आयी कि सरकार के दावों और हक़ीक़त में ज़मीन-आसमान का फ़र्क है। असलियत में सभी सरकारी विभागों में 'आउटसोर्सिंग' के ज़रिये लोगों की अस्थायी भर्तियाँ पहले ही शुरू हो गयी थीं, पक्की भर्तियों की संख्या में कमी करके संगठित क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों पर काम का दबाव लगातार बढ़ाया जा रहा है और उनके बचे-खुचे अधिकारों को भी छीना जा रहा है। रेल जैसे देश के सबसे बड़े सेक्टरों में से एक में लोग अमूमन 10-12 घण्टे काम करने के लिए मजबूर हैं।

**दरअसल इन श्रम संहिताओं का मक़सद देश के संगठित-औपचारिक क्षेत्र में कार्यरत 10 करोड़ मज़दूर-कर्मचारी आबादी के हालात को भी असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों जैसा अरक्षित बना देना है ताकि पूँजीपतियों को 'ईज़ ऑफ़ डूइंग बिज़नेस' (धन्धा करने में आसानी) का अधिकार दिया जा सके!** संगठित क्षेत्र पहले से ही सिकुड़ता जा रहा है और अब वहाँ भी ठेके और 'आउटसोर्सिंग' के ज़रिये काम की पूरी छूट दी जा रही है और वर्षों के संघर्ष और क़ुर्बानियों के दम पर जो श्रम अधिकार हासिल हुए थे, उसे इस सरकार ने चार लेबर कोड के ज़रिये एक झटके में ख़त्म कर दिया है।

असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों को पहले भी आम तौर पर श्रम क़ानूनों का फ़ायदा नहीं मिलता था लेकिन इन श्रम संहिताओं के आने के बाद से तो क़ाग़ज़ी तौर पर मौजूद उन क़ानूनों को भी ख़त्म कर दिया गया है जिसे कभी-कभार असंगठित क्षेत्र के मज़दूर लड़कर एक हद तक हासिल कर लेते थे।

चार लेबर कोड की असलियत पर विस्तार से हम 'मज़दूर बिगुल' के पुराने अंकों में लिखते रहे हैं लेकिन इसे लागू करने के पीछे मोदी सरकार की मंशा को एक बार फ़िर रेखांकित करने की ज़रूरत है। 1 अप्रैल 2026 से इन मज़दूर-विरोधी क़ानूनों को लागू किया जाना अनायास नहीं है। इसके पीछे की असली मंशा मुनाफ़े की गिरती औसत दर के संकट से जूझते पूँजीपति वर्ग का हित साधना है।

इस वक़्त दुनियाभर और भारत में पूँजीवाद के आन्तरिक अन्तरविरोधों से जन्मा आर्थिक संकट जैसे-जैसे गहराता जा रहा है, वैसे-वैसे पूँजीपति वर्ग अपने मुनाफ़े को बचाने के लिए तिलमिला रहा है और नित-नये क्षेत्रों का निजीकरण कर रहा है (रेलवे, एयरपोर्ट, उच्च शिक्षा, एलआईसी आदि), जंगल-पहाड़-नदियों को लूट रहा है और रहे-सहे श्रम क़ानूनों को भी ख़त्म कर रहा है। मोदी सरकार द्वारा लागू किये गये चार लेबर कोड के पीछे असल मंशा भी यही है कि कर्मचारियों-मज़दूरों की मेहनत को लूटने की खुली छूट पूँजीपतियों को दी जा सके। इन क़ानूनों के लागू होने के बाद कर्मचारियों का 'वर्कलोड' और काम के घण्टे तो बढ़ेंगे ही, साथ-साथ यूनियन बनाकर अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संगठित होने का हक़ भी छीन लिया जायेगा। **देश के पूँजीपति वर्ग ने 2014 में इसी काम के लिए भाजपा और नरेन्द्र मोदी को सत्ता में पहुँचाया था और उनके चुनाव प्रचार पर अरबों रुपये ख़र्च किये थे।** यह श्रम संहिताएँ पूँजी की इसी ज़रूरत को पूरा करने के लिए लायी गयी हैं। यह मज़दूरों-कर्मचारियों की पूरी मेहनतकश आबादी को ग़ुलामों की फ़ौज में तब्दील करने का एक फ़ासीवादी उपक्रम है। हालाँकि गोदी मीडिया के प्रचार के ज़रिये मोदी सरकार इन क़ानूनों के फ़ायदे गिनाने में ज़ोर-शोर से लगी हुई है ताकि लोग इस सच्चाई से वाकिफ़ ही न हो सकें।

लेबर कोड के विरुद्ध देशव्यापी अभियान में अधिकांश जगहों पर इस पूरी बातचीत से सहमति जताते हुए मज़दूरों-कर्मचारियों ने अपनी कार्यस्थितियों के उदाहरण से मोदी सरकार द्वारा किये गये हमलों की तस्वीर को स्पष्ट किया और साथ ही मज़दूर-वर्ग के हक़ों पर हुए इस फ़ासीवादी प्रहार के ख़िलाफ़ संघर्ष तेज़ करने की ज़रूरत और उसके स्वरूप पर भी बात की।

रेलवे कर्मचारियों ने बताया कि 1990 से 2023 तक रेलवे के नेटवर्क में काफ़ी वृद्धि हुई है जबकि पहले के मुक़ाबले कर्मचारियों की संख्या कम कर दी गयी है या उनमें पर्याप्त बढ़ोतरी नहीं की गयी है। 1990 में रेलवे कर्मचारियों की कुल संख्या लगभग 19, 50,000 के क़रीब थी जिसमें 16,51,800 नियमित कर्मचारी और लगभग 3 लाख ठेका कर्मचारी कार्यरत थे। आज उसकी तुलना में कर्मचारियों की संख्या में गिरावट आयी है। अभी रेलवे में कर्मचारियों की कुल संख्या लगभग 18,06,189 है, जिसमें 12.18 लाख नियमित कर्मचारी कार्यरत हैं और क़रीब 5.87 लाख ठेका एवं कैजुअल कर्मचारी हैं। इससे साफ़ तौर पर यह पता चलता है कि रेलवे में ठेकाकरण बढ़ा है और पक्की भर्तियों में कमी आयी है। कर्मचारियों का न सिर्फ 'वर्कलोड' बढ़ा है बल्कि उनके हक़ों को भी एक-एक करके छीना जा रहा है। जैसे जनवरी 2004 में OPS (पुरानी पेंशन स्कीम) को ख़त्म करके कर्मचारियों के अधिकारों पर बड़ा हमला किया गया और 2004 के बाद नियुक्त कर्मचारियों के ऊपर जबरन NPS (नयी पेंशन योजना) थोप दिया गया। NPS लाने के बाद इसका ज़बरदस्त विरोध हुआ जिसके बाद कर्मचारियों के असन्तोष पर पानी का ठण्डा छींटा मारने के लिए UPS (युनाइटेड पेंशन योजना) का झुनझुना थमाया गया। लेबर कोड के ज़रिये सिर्फ़ रेलवे ही नहीं बल्कि पूरे पब्लिक सेक्टर को निजी हाथों में सौंपने का रास्ता साफ़ कर दिया जायेगा। बीएसनल, एलआईसी आदि की स्थिति से यह बात आज साफ़ है। रेलवे का किश्तों में निजीकरण तो बहुत पहले ही शुरू हो चुका था पर मोदी सरकार द्वारा इसे और तेज़ किया गया और अब तो रेलवे को पूँजीपतियों के हाथों में सौंप देने की कवायद अन्धाधुन्ध

**(पेज 6 पर जारी)**

# मोदी सरकार के चार लेबर कोड और वीबी-ग्रामजी क़ानून के ख़िलाफ़ चल रहा अभियान

(पेज 5 से आगे)

तरीक़े से जारी है। रेलवे के 400 स्टेशनों को निजी हाथों में सौंपने की योजना इसकी एक बानगी है।

जनवरी महीने में बैंक कर्मचारियों की यूनियन ने भी कार्यदिवस घटाने की माँग को लेकर राष्ट्रव्यापी हड़ताल की थी जिसमें RWPI ने भागीदारी की। यूनाइटेड फ़ोरम ऑफ़ बैंक यूनियन्स (यूएफबीयू) ने बताया कि मार्च 2024 में वेतन संशोधन समझौते के दौरान इण्डियन बैंक्स एसोसिएशन (आईबीए) और यूएफबीयू के बीच सभी शनिवारों को अवकाश घोषित करने पर सहमति बनी थी लेकिन इसे अब तक कार्यान्वित नहीं किया गया है। इसलिए मजबूरन उन्हें कामबन्दी करनी पड़ रही है। यूनियन के प्रतिनिधियों ने बताया कि 'सप्ताह में पाँच दिनों के काम की माँग बेहद जायज़ है और तमाम विभागों में इसे लागू किया जाना चाहिए। आज विज्ञान व तकनीक के विकास का स्तर इतना बढ़ चुका है कि कम घण्टों में पर्याप्त काम/उत्पादन किया जा सकता है लेकिन पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था में उन्नत तकनीक का इस्तेमाल कर्मचारियों और मज़दूरों का जीवन आसान बनाने के लिए नहीं बल्कि उनसे और काम करवाकर मुनाफ़ा पैदा करने के लिए किया जाता है। उन्होंने कहा कि 'नये लेबर कोड' में ओवरटाइम की व्याख्या को अस्पष्ट कर दिया गया है ताकि काम के घण्टे बढ़ाये जा सकें। इसके ज़रिये बेगार काम करवाने को क़ानूनी जामा पहनाकर और सामान्य बना दिया गया है। चार लेबर कोड के सेक्शन 14 में कहा गया है कि सामान्य दिन के काम के घण्टे सरकार के नोटिफ़िशन के ज़रिये तय होंगे और उससे अधिक काम करना ओवरटाइम कहलायेगा। यानी अगर सरकार सामान्य दिन में 10 घण्टे काम का नोटिफ़िकेशन जारी करती है, तो 10 घण्टे के बाद किया जाने वाला काम ही ओवरटाइम कहलायेगा।

लेबर कोड के ख़िलाफ़ चलाये जा रहे इस देशव्यापी अभियान का असर 12 फ़रवरी की एकदिवसीय हड़ताल में भी देखने को मिला। RWPI, 'बिगुल मज़दूर दस्ता' व कई यूनियनों ने कई इलाकों में हड़ताल में शिरकत की। केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के आह्वान पर हुई इस हड़ताल में अलग-अलग विभागों के कर्मचारियों और मज़दूरों ने भागीदारी तो की, लेकिन पूरी तरह से कामबन्दी देशभर में बहुत कम जगहों पर ही देखने को मिली। हालाँकि लेबर कोड के ख़िलाफ़ चलाये जा रहे इस अभियान में शामिल संगठनों ने अपनी ताक़त के हिसाब से काम बन्द करने से लेकर स्थानीय प्रदर्शनों, रैलियों, मीटिंग्स के आयोजन के ज़रिये मोदी सरकार की मज़दूर-विरोधी नीतियों का विरोध जताया।

**दिल्ली** के जन्तर-मन्तर पर अलग-अलग क्षेत्रों में कार्यरत यूनियनों के प्रतिनिधियों ने इकट्ठा होकर चार लेबर कोड के ख़िलाफ़ अपनी बात भी रखी। राजधानी के कई औद्योगिक इलाक़े में हड़ताल सफलतापूर्वक की गयी। बवाना के सेक्टर 5 में 'बवाना औद्योगिक क्षेत्र मज़दूर यूनियन' के नेतृत्व में हड़ताल की गयी। मज़दूरों ने अपनी ताक़त का ज़बरदस्त प्रदर्शन करते हुए एक-एक फ़ैक्ट्री बन्द करवायी और जुलूस में शामिल हुए। बवाना के सेक्टर 5 में क़रीब 80-90 फ़ीसदी फैक्टरियों में काम ठप्प रहा। वज़ीरपुर के इलाक़े में 'दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन' समेत अन्य यूनियनों ने ए-ब्लॉक और बी-ब्लॉक में फैक्टरियों को बन्द करवाया और यह चेतावनी दी कि आने वाले वक़्त में मोदी सरकार की मज़दूर-विरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ संघर्ष तेज़ करेंगे। इन दोनों ही इलाक़ों में हड़ताल के ज़रिये मज़दूरों ने यह चेतावनी दी कि अपनी माँगों के लिए आने वाले वक़्त में वे लम्बी हड़तालों के लिए भी तैयार हैं। ओखला, मायापुरी, झिलमिल से लेकर अन्य औद्योगिक इलाक़ों में भी हड़ताल का कुछ हद तक असर देखने को मिला।

**हरियाणा** के कलायत में देशव्यापी हड़ताल के तहत मज़दूरों, कर्मचारियों व ग़रीब किसान संगठनों ने शहर में रोष प्रदर्शन किया। 'क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन' ने भी हड़ताल में बढ़-चढ़कर भागीदारी की। मनरेगा यूनियन द्वारा बीडीपीओ कार्यालय में मनरेगा के तहत काम की माँग को लेकर ज्ञापन सौंपा गया। 12 फ़रवरी को कलायत के प्रदर्शन में मनरेगा मज़दूरों और ग़रीब किसानों के साथ बड़ी संख्या में कच्चे कर्मचारी, आँगनवाड़ी वर्कर, आशा वर्कर, मिड-डे मील वर्कर, ग्रामीण सफ़ाई कर्मचारी आदि शामिल हुए और यह ऐलान किया कि यदि समय रहते कच्चे कर्मचारियों को पक्का दर्जा नहीं दिया गया, तो आन्दोलन और तेज़ किया जायेगा। जनसभा को सम्बोधित करते हुए मनरेगा यूनियन के अजय ने कहा, "चार लेबर कोड के ज़रिये मोदी सरकार मज़दूरों के बचे-खुचे काग़ज़ी अधिकारों को भी छीनने पर तुली हुई है। यह सरकार लगातार मज़दूरों की ताक़त को कमज़ोर कर रही है। साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में 'विकसित भारत – रोज़गार एवं आजीविका गारण्टी मिशन (ग्रामीण), 2025' (VB-GRAM-G) जैसी योजनाएँ दरअसल रोज़गार गारण्टी को ही ख़त्म करने की साज़िश हैं। ऐसी योजनाओं के ज़रिये सरकार अपनी क़ानूनी जवाबदेही से बचना चाहती है।" उन्होंने आगे कहा कि 125 दिनों के रोज़गार का दावा महज़ एक खोखला नारा है। सरकार ने स्वयं संसद में स्वीकार किया है कि हाल के वर्षों में मज़दूरों को औसतन केवल 50.35 दिन का ही काम मिला है। मौजूदा बजट में भी VB-GRAM-G के तहत प्रावधान केवल लगभग 52 कार्यदिवसों के लिए ही फण्ड उपलब्ध कराते हैं। गाँव सिमला के अनिल ने बताया कि मनरेगा क़ानून स्वयं अधूरा है, क्योंकि यह केवल 100 दिनों के रोज़गार तक सीमित है, जबकि ज़रूरत साल के 365 दिन क़ानूनी रूप से गारण्टीशुदा स्थायी रोज़गार की है। रोष प्रदर्शन में 'क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन' ने कहा कि जब तक मज़दूर वर्ग स्वयं संगठित होकर संघर्ष नहीं करेगा, तब तक मज़दूर-विरोधी नीतियाँ और अधिक आक्रामक ढंग से थोपी जाती रहेंगी। इसलिए ग्रामीण और शहरी मज़दूरों से आह्वान है कि वे देशव्यापी हड़ताल को व्यापक बनाते हुए इसे अनिश्चितकालीन आम हड़ताल में बदलने की दिशा में आगे बढ़ें।

**तेलंगाना** की राजधानी **हैदराबाद** में 'मज़दूर बिगुल तेलुगू' की टीम ने देशव्यापी आम हड़ताल में भाग लिया। 'मज़दूर बिगुल' की ओर से साथी भार्गवी ने हड़ताल के लिए एकजुट हुए सैकड़ों मज़दूरों-कर्मचारियों को बधाई देते हुए बात रखी। भार्गवी ने कहा कि मोदी सरकार के चार लेबर कोड आज़ादी के बाद मज़दूरों के अधिकारों पर अब तक का सबसे बड़ा हमला हैं। मोदी सरकार के रुख़ से यह स्पष्ट है कि वह 1 अप्रैल से इन कोड को लागू करने के लिए कमर कस चुकी है। ऐसे में एकदिवसीय रस्मी हड़ताल से इस फ़ासीवादी सरकार के कान पर जूँ तक नहीं रेंगने वाली है। **समय आ गया है कि मज़दूर वर्ग अपने अमोघ अस्त्र यानी अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का इस्तेमाल करे।** हाल के वर्षों में यह देखा गया है कि मोदी सरकार तभी झुकी है जब प्रदर्शनकारी अपनी माँग पूरी होने तक डेरा डालकर बैठ जाते हैं। अब मज़दूर वर्ग को अगर अपनी ग़ुलामी के दस्तावेज़ यानी चार लेबर कोड से निजात चाहिए तो उसे एक या दो दिन की हड़ताल नहीं बल्कि अनिश्चितकालीन आम हड़ताल के रास्ते पर जाना होगा। भार्गवी ने पिछले कुछ महीनों में इस काले क़ानून के ख़िलाफ़ 'मज़दूर बिगुल' द्वारा चलाये गये अभियानों का हवाला देते हुए कहा कि तमाम मज़दूर और कर्मचारी चार लेबर कोड को रद्द करवाने के लिए अनिश्चितकालीन आम हड़ताल के रास्ते पर जाने के लिए तैयार हैं। उन्होंने इन लेबर कोड को रद्द करने, वीबी-ग्रामजी क़ानून को रद्द करने और मनरेगा को बहाल करने एवं नयी पेंशन स्कीम की बजाय पुरानी पेंशन स्कीम को लागू करने की माँग उठायी।

**आन्ध्र प्रदेश** के **विशाखापत्तनम, विजयवाड़ा, ताडेपल्ली, गुडीवाड़ा** और **मछलीपत्तनम** शहरों में हुई हड़ताल में 'मज़दूर बिगुल' की टीम ने हिस्सा लिया। विशाखापत्तनम में हिन्दुस्तान शिपयार्ड, हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉरपोरेशन और एलआईसी हेडक्वार्टर पर पर्चे बाँटकर एकदिनी हड़ताल को तेज़ करने की बात कही गयी। साथ ही, शहर में हुए जुलूस और गाँधी प्रतिमा पर हुई जन सभा में हिस्सा लिया गया और चार लेबर कोड के ख़िलाफ़ लड़ाई को अनिश्चितकालीन आम हड़ताल में तब्दील करने की अपील की गयी। विजयवाड़ा शहर में भी 'मज़दूर बिगुल' के स्थानीय साथियों ने केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों द्वारा आयोजित एक बड़े जुलूस में भागीदारी की। गुडीवाड़ा में 'श्रमिक हक्कुला पोराटा संघम' (SHPS) ने 'गुडीवाड़ा इण्डस्ट्रियल और ऑटोमोबाइल वर्कर्स यूनियन' की हड़ताल को नेतृत्व दिया। यह यूनियन SHPS से जुड़ी हुई है और इसके सदस्यों ने आम हड़ताल के समर्थन में एक बाइक रैली निकाली। SHPS से कॉमरेड रघु ने मज़दूरों की सभा को सम्बोधित किया और उनका आह्वान किया कि अगर आज अनिश्चितकालीन आम हड़ताल की तरफ़ नहीं बढ़ते हैं तो कल बहुत देर हो जायेगी। 'बिगुल' के कार्यकर्ताओं ने मंगलगिरी-ताडेपल्ली कॉर्पोरेशन और मछलीपत्तनम शहर में हुई विरोध सभाओं में भी हिस्सा लिया, जिसमें चार लेबर कोड को तुरन्त रद्द करने की माँग की गयी।

**कोलकाता** में 'बिगुल मज़दूर दस्ता' ने चार लेबर कोड के ख़िलाफ़ 12 फ़रवरी को हुई एक दिन की हड़ताल में हिस्सा लिया और इस विरोध को अनिश्चितकालीन आम हड़ताल में बदलने की अपील की। इसके लिए इण्डियन कॉफ़ी हाउस, कॉलेज स्ट्रीट और कलकत्ता यूनिवर्सिटी के पास सड़कों पर कैम्पेन चलाये गये और धर्मतला इण्टरस्टेट बस डिपो पर बसों में अभियान चलाये गये।

चार लेबर कोड के ख़िलाफ़ **उत्तराखण्ड** में 'नौजवान भारत सभा' और 'बिगुल मज़दूर दस्ता' द्वारा व्यापक अभियान चलाया गया। अभियान का प्रथम चरण 14 दिसम्बर से शुरू होकर 12 फ़रवरी की एक दिवसीय हड़ताल तक चला। अभियान को हरिद्वार सिडकुल और भेल मज़दूरों के बीच व्यापक तौर पर चलाया गया। इसके साथ ही हरिद्वार और देहरादून के रेलवे, बैंक, बीमा, डाक, परिवहन और बिजली विभागों में भी विशेष तौर पर चलाया गया। इस अभियान में जगह-जगह नुक्कड़ सभा, रैली, पर्चा वितरण, पोस्टरिंग और घर-घर सम्पर्क किया गया।

**हरिद्वार** भेल की कालोनियों में घर-घर संपर्क के दौरान मज़दूरों से चार लेबर कोड के विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता को लेकर बहुत ही सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ मिलीं। ज़्यादातर मज़दूरों को इसकी गम्भीरता का एहसास था और वे इसके ख़िलाफ़ संघर्ष करने को तैयार थे लेकिन भेल मज़दूरों की विभिन्न यूनियनों में 12 फ़रवरी की एकदिवसीय हड़ताल को लेकर अनिश्चितता की स्थिति थी। कॉलोनी अभियान के दौरान टीम की कुछ यूनियन पदाधिकारियों से भी मुलाक़ात हुई। हड़ताल को लेकर उनका कहना था कि अभी उनकी यूनियन में इसपर कोई ठोस रणनीति नहीं बनी है। कुछ केन्द्रीय यूनियन/फ़ेडरेशन से जुड़े हुए पदाधिकारियों ने कहा कि इसपर ऊपर से जो दिशा-निर्देश आयेंगे, हम उसी पर चलेंगे। इसके साथ ही रेलवे, बैंक और एलआईसी के कर्मचारियों ने हमारे अभियान का स्वागत किया। अपने व्हाट्सएप ग्रुपों में हमारे पर्चे डाले। यूनियन लीडरों से मुलाक़ात करवायी। बहुत से मज़दूर-कर्मचारी लेबर कोड के लागू होने से चिन्तित थे और अपनी यूनियनों की कार्यप्रणाली को लेकर आलोचनात्मक थे। वहीं दूसरी तरफ़ हरिद्वार रेलवे के ज़्यादातर कर्मचारियों को 12 फ़रवरी की हड़ताल के बारे में कोई जानकारी ही नहीं थी! उनका कहना था कि ये तो आप लोगों से हमें पता चल रहा है कि ऐसी कोई हड़ताल भी होने वाली है। देहरादून रेलवे के कर्मचारियों ने बताया कि ऊपर से अभी कोई ठोस गाइडलाइंस नहीं आयी है। इसका परिणाम भी 12 फ़रवरी की हड़ताल में दिखायी दिया। हरिद्वार रेलवे में कुछ भी नहीं हुआ। देहरादून रेलवे में कर्मचारियों ने काली पट्टी और काला बैज लगाकर काम किया लेकिन काम का बहिष्कार नहीं किया। यही स्थिति बैंक, बीमा और डाक सेक्टर में रही! कुछ बैंकों और एलआईसी ऑफिस के सामने थोड़ी देर के लिए कर्मचारियों ने बाहर आकर नारे लगाये और वापस काम पर चले गये। हरिद्वार भेल के फ़ाउन्ड्री गेट पर संयुक्त प्रदर्शन में 'नौजवान भारत सभा' और 'बिगुल मज़दूर दस्ता' की भागीदारी रही। शाम 4 बजे हरिद्वार भेल के फ़ाउण्ड्री गेट पर सात से आठ यूनियनों और संगठनों ने चार लेबर कोड के ख़िलाफ़ प्रदर्शन किया और अपनी सभा की।

12 फ़रवरी की एकदिवसीय हड़ताल का उत्तराखण्ड में बहुत ही मिला-जुला असर रहा। केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों/फ़ेडरेशनों की लोकल लीडरशिप भी 12 फ़रवरी की हड़ताल को लेकर कोई उत्सुकता नहीं दिखा रही थी और न ही उन्हें इस सम्बन्ध में अन्य यूनियनों की गतिविधियों को लेकर कोई उत्सुकता थी। बीते दो महीनों के इस अभियान के दौरान 'नौजवान भारत सभा' और 'बिगुल मज़दूर दस्ता' की टीम का यह अनुभव रहा कि इसे व्यापक बनाया जा सकता था लेकिन तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों और फ़ेडरेशनों के ढीले-ढाले रुख और कार्यप्रणाली ने इसे निष्प्रभावी बना दिया। लेकिन इसके बावजूद चार लेबर कोड को लेकर बहुसंख्यक मज़दूरों-कर्मचारियों में गुस्सा है और वे इसके ख़िलाफ़ संगठित होकर लम्बा संघर्ष करने को तैयार हैं।

चार लेबर कोड के विरुद्ध अभियान के तहत **उत्तर प्रदेश** में **बनारस, लखनऊ, इलाहाबाद, गोरखपुर, मऊ, गाज़ीपुर, नोएडा** व **अम्बेडकरनगर** ज़िले में अभियान चलाया गया। इस सघन एवं व्यापक अभियान के दौरान इन ज़िलों में संगठित एवं असंगठित, दोनों ही क्षेत्रों में काम करने वाली आबादी के बीच विभिन्न स्वरूपों में अभियान चलाया गया।

**लखनऊ** में 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' (RWPI) की ओर से 1 से 10 फ़रवरी के बीच सात दिन लेबर कोड पर अभियान चलाया गया। RWPI के कार्यकर्ताओं ने इस दौरान चारबाग़ रेलवे स्टेशन पर रनिंग स्टाफ़, पार्सल विभाग और आरएमएस, चारबाग़ स्थित यूनियन कार्यालय, रेलवे लोको वर्कशॉप, रेलवे डीज़ल शेड, जवाहर भवन स्थित राज्य सरकार के कार्यालयों व जीपीओ में अभियान चलाया। एक दिन जवाहर भवन-इंदिरा भवन पर लेबर कोड को लेकर पोस्टर प्रदर्शनी लगाई और परचे बाँटे गये। चारबाग़ पर कुलियों के बीच भी एक दिन सभा करके पर्चा वितरण किया गया। कई जगहों पर ठेकेदारों

(पेज 7 पर जारी)

# मोदी सरकार के चार लेबर कोड और वीबी-ग्रामजी क़ानून के ख़िलाफ़ चल रहा अभियान

(पेज 6 से आगे)

और बड़े अधिकारियों ने अभियान को रोकने, कर्मचारियों से बातचीत में बाधा डालने की कोशिश की लेकिन आम कर्मचारियों, मज़दूरों ने बातों को संजीदगी से सुना।

12 फ़रवरी को RWPI के कार्यकर्ताओं की ओर से रेलवे लोको वर्कशॉप में यूनियन प्रतिनिधियों और कर्मचारियों के साथ पूरे वर्कशॉप में घूमकर सभाएँ की गयीं और परचे बाँटे गये। इसके बाद कार्यकर्ता शक्ति भवन गये जहाँ उनकी पहल पर बिजली कर्मचारियों और संयुक्त संघर्ष समिति ने विरोध प्रदर्शन किया। इसके बाद पूर्वोत्तर रेलवे के डीआरएम ऑफ़िस में यूनियन के साथ मिलकर विरोध प्रदर्शन तथा नारेबाजी हुई।

ज़्यादातर जगहों पर कर्मचारियों ही नहीं, यूनियन के लोगों को भी एक दिन पहले तक यह पता ही नहीं था कि 12 को क्या और कहाँ होना है! इन सारे अभियानों का एक आम अनुभव यह रहा है कि लेबर कोड से होने वाले नुक़सान या इसकी गम्भीरता के बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं थी। यह स्पष्ट रूप से देखने को मिला कि यूनियनों की तरफ़ से इस सवाल पर कर्मचारियों को जागरूक और लामबन्द करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। RWPI की ओर से लेबर कोड के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष और अनिश्चितकालीन आम हड़ताल की ज़रूरत पर बात की गयी तो कर्मचारियों से लेकर यूनियन नेताओं तक ने इसका समर्थन किया। सभी जगह केन्द्रीय नेतृत्व के ढुलमुलपन के प्रति कर्मचारियों में बहुत आक्रोश दिखा। सभी जगह कर्मचारियों ने उन पर काम के बढ़ते दबाव, ठेकाकरण, निजीकरण आदि समस्याओं के बारे में बताया और इस बात को माना कि लेबर कोड लागू होने के बाद से उनकी मुश्किलें बढ़ेंगी, साथ ही आवाज़ उठाना पहले से भी कठिन हो जायेगा।

**बनारस** में 'बिगुल मज़दूर दस्ता' ने चार लेबर कोड के विरोध में जारी पर्चों को लेकर बनारस शहर के अलग-अलग सरकारी विभागों में अभियान चलाया। इस अभियान में 'दिशा छात्र संगठन' की स्थानीय इकाई ने भी भागीदारी की। दिसम्बर माह में एलआईसी के कार्यालय में पर्चा वितरण के साथ इस अभियान की शुरुआत की गयी थी। इसके बाद बीएलडब्ल्यू, बिजली विभाग, रेल कर्मचारियों की कॉलोनियों, वाराणसी एवं बनारस जंक्शन, डाक विभाग, जल निगम आदि जगहों पर अभियान चलाया गया। इस अभियान के दौरान पर्चा वितरण, प्रदर्शनी, स्थानीय प्रदर्शनों में भागीदारी करते हुए लेबर कोड के पर्चे का वितरण आदि तरीक़े अपनाये गये। देशव्यापी हड़ताल की तिथि नज़दीक आने पर एक बार फिर से बिजली विभाग, बीएलडब्ल्यू, एलआईसी, पीडब्ल्यूडी, एसबीआई और यूओबी के कार्यालयों में पर्चा वितरित किया गया। बीएचयू के छात्रों के बीच भी इस सवाल पर एक परिचर्चा का आयोजन किया गया।

12 फ़रवरी की हड़ताल के दिन सिर्फ़ एलआईसी ने पूर्ण हड़ताल का कॉल दिया था। 'बिगुल' के कार्यकर्ताओं ने आन्दोलन स्थल पर जाकर हड़ताल को समर्थन दिया। इसके बाद 'बिगुल' के कार्यकर्ता ऑल इंडिया लोको रनिंग स्टाफ़ एसोसिएशन के कार्यक्रम में गये, जहाँ उन्होंने हड़ताल के समर्थन में बात रखी और गीत प्रस्तुत किये। बिजली विभाग के कर्मचारियों ने भी हड़ताल के समर्थन में कार्यक्रम आयोजित किया गया था जिसमें 'बिगुल' और 'दिशा' के कार्यकर्ताओं ने भागीदारी की और सभा में बात रखी तथा गीत प्रस्तुत किये। बीएलडब्ल्यू में आम हड़ताल के समर्थन में वर्कशॉप गेट से प्रशासनिक भवन तक का मार्च छुट्टी के समय निकाला गया था। इस मार्च में भी इस अभियान की टोली ने भागीदारी की। इस पूरे अभियान के दौरान इस टोली ने हज़ारों पर्चे वितरित किये।

**गोरखपुर** शहर में 'बिगुल मज़दूर दस्ता' की ओर से चार लेबर कोड के ख़िलाफ़ दिसम्बर माह से 12 फ़रवरी तक सघन अभियान चलाया गया। 2 दिसम्बर को बरगदवा औद्योगिक क्षेत्र में नुक्कड़ सभा और व्यापक पर्चा वितरण किया गया। इसके बाद बरगदवा में ही चार लेबर कोड के ख़िलाफ़ मज़दूर लॉजों में अभियान चलाया गया। गोरखपुर में डेयरी रेलवे कॉलोनी में घर-घर अभियान 4 से 5 दिन तक चलाया गया। इस अभियान में लोगों की अच्छी प्रतिक्रिया मिली। रेलवे के वॉशिंग लाइन, क्रू लॉबी, पार्सल विभाग में एक-एक व्यक्ति से सम्पर्क करके लेबर कोड के ख़िलाफ़ पर्चा बाँटा गया और बातचीत की गयी। एलआईसी और बिजली विभाग में भी पर्चा बाँटा गया।

12 फ़रवरी की देशव्यापी हड़ताल को ध्यान में रखते हुए 6 फ़रवरी से गोरखपुर शहर में कारखाने और तमाम विभागों में पर्चा वितरण किया गया। रेलवे वॉशिंग लाइन, रेल कारखाना, डाक, एलआईसी बख़्शीपुर, एलआईसी तारामण्डल, एसबीआई मुख्य ब्राँच और रेलवे ऑफ़िशियल एरिया में 12 फ़रवरी को देशव्यापी हड़ताल को सफल बनाने की अपील करते हुए लोगों के बीच में यह बातचीत की गयी कि एकदिवसीय हड़ताल से अनिश्चितकालीन आम हड़ताल की तरफ़ बढ़ना होगा तभी सरकार झुकेगी। इस बात से ज़्यादातर विभागों के कर्मचारी सहमत थे कि बिना जुझारू संघर्ष के चार लेबर कोड पर सरकार झुकने वाली नहीं है।

12 फ़रवरी के दिन 'बिगुल मजदूर दस्ता' और 'दिशा' के कार्यकर्ताओं की तरफ़ से बैंक, एलआईसी बख़्शीपुर, एलआईसी तारामण्डल और रेलवे में आयोजित सभाओं में भागीदारी की गयी। वहाँ पर गीत गाये गये और नारेबाज़ी की गयी। इस पूरे अभियान के दौरान गोरखपुर शहर में हज़ारों पर्चे वितरित किये गये।

**इलाहाबाद** में 'बिगुल मज़दूर दस्ता' और 'दिशा छात्र संगठन' ने मिलकर दिसम्बर माह से चार लेबर कोड के ख़िलाफ़ अभियान की शुरुआत की। शुरू में अभियान मुख्यतः लेबर चौराहों और नगर निगम के सफाई कर्मचारियों की मज़दूर बस्तियों को लक्षित करते हुए चलाया गया। साथ ही, सरकारी विभागों में कर्मचारियों से मिलने और कार्यालयों में पर्चा वितरण का सिलसिला चलता रहा। इलाहाबाद जंक्शन, प्रयाग जंक्शन, प्रयागराज संगम जंक्शन, फूलपुर रेलवे स्टेशन पर अभियान चलाया गया। इस दौरान यह बात बार-बार रेखांकित हुई कि ज़्यादातर विभागों में यूनियनों ने हड़ताल अथवा चार लेबर कोड के सवाल पर कर्मचारियों के बीच में कुछ भी नहीं किया। डाक, नेशनल इंश्योरेंस, रेलवे, बीएसएनएल, पीडब्ल्यूडी, सिंचाई आदि विभागों के अधिकांश कर्मचारियों को हड़ताल के बारे में हमलोगों से जानकारी मिली। सरकारी विभागों के कर्मचारियों के एक बड़े तबके को लेबर कोड के बारे में जानकारी ही नहीं है। केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों ने इस हड़ताल के लिए न तो प्रचार चलाया और न ही अपने सदस्यों को शिक्षित-प्रशिक्षित करने पर कोई विशेष ज़ोर दिया। हड़ताल की रैली में भी आँगनबाड़ी और आशाकर्मियों की एक बड़ी संख्या के अलावा अन्य विभागों से कोई उल्लेखनीय भागीदारी नहीं रही।

हड़ताल के दिन इलाहाबाद में केवल एलआईसी और कुछ बैंक बन्द रहे। एलआईसी में क्लर्क ग्रेड की यूनियन ही मुख्यतः हड़ताल में शामिल हुई, ऑफ़िसर्स यूनियन हड़ताल में शामिल नहीं रही लेकिन उनके प्रतिनधि हड़ताल के समर्थन में सभा स्थल पर मौजूद रहे। शहर की मुख्य हड़ताल सभा एलआईसी परिसर में ही आयोजित हुई। इस सभा में 'बिगुल' और 'दिशा' की संयुक्त अभियान टीम के प्रतिनिधियों ने बात रखी, गीत गाये और व्यापक पर्चा वितरित किया। आँगनवाड़ी की महिलाएँ अलग जगह पर इकठ्ठा हुईं। इस जुटान में भी इस अभियान टोली ने भागीदारी की। बैंक की चार बड़ी यूनियनों में से केवल एक यूनियन सक्रिय तौर पर हड़ताल में शामिल रही। इसी यूनियन के लोग सुबह से ही बैंक बन्द करवाने में लगे रहे। बिजली विभाग के कर्मचारियों द्वारा लंच के समय हड़ताल के समर्थन में प्रदर्शन का आयोजन किया गया था। इन सभी आन्दोलनों, प्रदर्शनों और सभाओं में इस अभियान टोली की सक्रिय भूमिका रही।

अम्बेडकरनगर में RWPI के कार्यकर्ताओं ने हड़ताल के दिन बैंक कर्मचारियों के बीच पर्चा वितरण किया।

**मऊ** और **गाज़ीपुर** में 'बिगुल मज़दूर दस्ता' और 'नौजवान भारत सभा' ने चार लेबर कोड के विरुद्ध अभियान चलाया। मऊ में रेलवे, बिजली, एलआईसी, रोडवेज़, लोक निर्माण विभाग, बैंकों, सिंचाई विभाग में पर्चा वितरण किया गया। गाज़ीपुर में रेलवे, बिजली के एक हिस्से में, लोक

(पेज 7 पर जारी)

# मोदी सरकार के चार लेबर कोड और वीबी-ग्रामजी क़ानून के ख़िलाफ़ चल रहा अभियान

(पेज 7 से आगे)

निर्माण विभाग में अभियान चलाकर कर्मचारियों के बीच में चार लेबर कोड के विरुद्ध पर्चा वितरण किया गया।

उत्तर प्रदेश के विभिन्न शहरों में चले इस अभियान के दौरान यह आम अनुभव रहा कि अधिकांश कर्मचारियों और मज़दूरों की यूनियनों ने लेबर कोड के सवाल पर और हड़ताल को लेकर कर्मचारियों के बीच में कोई तैयारी नहीं की। कई विभागों में 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' और 'बिगुल मज़दूर दस्ता' की अभियान टोलियों के माध्यम से ही कर्मचारियों को इस बारे में पता चला। चार लेबर कोड से कर्मचारियों को होने वाले नुक़सान पर बात करने पर ज़्यादातर कर्मचारियों ने बातचीत से सहमति प्रकट की। कर्मचारियों का एक हिस्सा ऐसा भी था, जिस पर फ़ासीवादी प्रचार का प्रभाव है लेकिन बड़ी आबादी इन ख़तरों पर बात करने पर सहमति प्रकट कर रही थी। यह भी सामने आया कि विभागों की परम्परागत यूनियनों पर कर्मचारियों का कोई भरोसा नहीं रह गया है और इन यूनियनों ने कर्मचारियों के बीच अपना आधार खो दिया है। ज़्यादातर कर्मचारियों में यूनियन के नेताओं के प्रति असन्तोष दिखायी दिया। सभी विभागों में कर्मचारियों ने अपने विभागों की समस्याओं पर बात करने पर बहुत सारे मुद्दे रेखांकित किये।

RWPI की तरफ से **महाराष्ट्र** में **मुम्बई, पुणे** व **अहमदनगर** में चार लेबर कोड विरोधी अभियान चलाया जा रहा है जिसमें अबतक मुख्यतः बैंक, रेलवे, पोस्ट और टेलीग्राम के मज़दूरों-कर्मचारियों को लेबर कोड के फ़ासीवादी हमले से परिचित कराया गया है। इसके अलावा मुम्बई में बृहन्मुम्बई विद्युत आपूर्ति एवं यातायात (BEST) जो मुम्बई की मुख्य सार्वजनिक बस परिवहन और बिजली प्रदाता संस्था है और शहर के कुछ लेबर चौक पर भी अभियान चलाया गया। पुणे में मार्केटयार्ड में बोझा ढोने वाले मज़दूर, निर्माण मज़दूर, जीवन बीमा निगम, भारत संचार निगम लिमिटेड (BSNL), महाराष्ट्र स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड में और अहमदनगर में स्थानिक महाराष्ट्र औद्योगिक विकास निगम में भी अभियान चलाया गया। आमतौर पर सभी विभागों के मज़दूरों के बीच चार लेबर कोड के ख़िलाफ़ गुस्सा है और मौजूदा यूनियन नेतृत्व द्वारा उठाये जा रहे प्रतीकात्मक क़दम और संघर्ष की दिशा को तय करने में देरी की समस्या है। इन सभी जगहों पर RWPI ने हस्तक्षेप करते हुए आज़ादी के बाद मज़दूर वर्ग पर हुए इस सबसे बड़े हमले के ख़िलाफ़ निर्णायक संघर्ष शुरू करने की बात कही। 12 फ़रवरी की हड़ताल में शिरकत करते हुए संघर्ष को अनिश्चितकालीन आम हड़ताल में तब्दील करने का आह्वान किया। पुणे में 'महाराष्ट्र निर्माण मज़दूर यूनियन' के बैनर तले निर्माण मज़दूर भी बड़ी संख्या में इस हड़ताल में शामिल रहे।

'बिगुल मज़दूर दस्ता' द्वारा **पटना, चण्डीगढ़, रोहतक** में भी देशव्यापी हड़ताल में भागीदारी की गयी और मज़दूरों-कर्मचारियों के बीच व्यापक पर्चा वितरण करके प्रतीकात्मक विरोध-प्रदर्शनों से आगे बढ़ कर लेबर कोड के ख़िलाफ़ अनिश्चितकालिन आम हड़ताल की तैयारी करने पर विशेष ज़ोर दिया गया।

**दिल्ली** में 8 फ़रवरी को लेबर कोड के विरुद्ध RWPI द्वारा आयोजित सम्मेलन में अलग-अलग विभागों से मज़दूरों-कर्मचारियों के प्रतिनिधि शामिल रहे। इसके अलावा देशभर से कई यूनियनों व संगठनों के प्रतिनिधियों ने शामिल होकर लेबर कोड के ख़िलाफ़ संगठित होने की ज़रूरत पर अपनी बात रखी। 'मज़दूर बिगुल पंजाब' और तेलंगाना से प्रतिनिधियों ने हिस्सेदारी की। आन्ध्र प्रदेश से आये वरिष्ठ ट्रेड यूनियन नेता और 'श्रमिक हक्कुला पोराटा संघम' (SHPS) से जुड़े कॉमरेड रघु ने सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए लेबर कोड के विरुद्ध लम्बी और जुझारु लड़ाई की तरफ़ बढ़ने की बात कही। इसके अलावा 'महाराष्ट्र बाँधकाम कामगार यूनियन', 'क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन', 'ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन' (AICWU), 'बवाना औद्योगिक क्षेत्र मज़दूर यूनियन', 'मनरेगा संघर्ष मोर्चा', 'IFTU सर्वहारा' और 'मज़दूर' पत्रिका के प्रतिनिधियों ने भी अपने विचार साझा किये।

पिछले दो से अधिक महीने के दौरान पूरे देश में तमाम क्रान्तिकारी मज़दूर सगठनों व यूनियनों द्वारा इस सन्देश को सगंठित-असंगठित क्षेत्र के लाखों मज़दूरों तक पहुँचाया गया है और अभी भी पहुँचाया जा रहा है। केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के पदाधिकारियों और नेतृत्व से मिलकर अनिश्चितकालीन आम हड़ताल की तैयारी की दिशा में आगे बढ़ने के लिए अपील-पत्र भी सौंपा गया है। रेलवे, डाक व टेलीग्राफ़, सड़क परिवहन, बैंक, बीमा व तमाम आवश्यक सेवाओं में काम करने वाली मज़दूर व कर्मचारी आबादी ने इस प्रस्ताव का पुरज़ोर समर्थन किया है। 8 फ़रवरी के सम्मेलन से लेकर अभियानों और हड़ताल, प्रदर्शनों के दौरान यह आम राय स्पष्ट तौर पर सगंठित मज़दूरों के बीच से सामने आयी है कि ऐसी अनिश्चितकालीन आम हड़ताल के ज़रिये ही मोदी सरकार की इन नयी तानाशाहाना श्रम संहिताओं को वापस करवाया जा सकता है। कई राज्यों में अलग-अलग स्वतन्त्र यूनियनों ने अनिश्चितकालीन आम हड़ताल के आह्वान पर उसमें शामिल होने की घोषणा भी की है।

ऐसे में, **हम केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों से एक बार फिर अपील करते हैं कि वे इस दिशा में संघर्ष की घोषणा करें।** केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की मौजूदगी बैंक, रेलवे, बीमा, डाक, परिवहन समेत तमाम सरकारी व निजी सेक्टरों के संगठित मज़दूरों-कर्मचारियों के बीच है और इसलिए उनके आह्वान पर मोदी सरकार के इस हमले को रोका जा सकता है। निश्चित तौर पर उपरोक्त क्षेत्रों में काम करने वाली मज़दूर आबादी आज कुल मज़दूर आबादी का महज़ 12-15 फ़ीसदी हिस्सा है। लेकिन रणनीतिक तौर पर अर्थव्यवस्था के इन सेक्टरों का महत्व सबसे अधिक है। इन सेक्टरों में काम का रुकना, मतलब पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन व संचरण की मशीनरी का रुक जाना और नतीजतन समूची मुनाफ़ा केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था का ठप्प पड़ जाना। इन सभी सेक्टरों को मज़दूर व कर्मचारी अपनी मेहनत के बल पर चलाते हैं जिसके ज़रिये पूँजीपति अपना मुनाफ़ा बनाते हैं।

पूँजीपति वर्ग को घुटनों पर केवल तभी लाया जा सकता है, जब उसके मुनाफ़े का चक्का ठप्प पड़े। इसके बिना, एक-दो दिन की रस्मअदायगी वाली हड़तालों से केवल उसे कुछ तात्कालिक आर्थिक नुक़सान होता है और चूँकि पूँजीपति वर्ग एक राजनीतिक वर्ग है इसलिए अपने अहम राजनीतिक फ़ायदों के लिए वह ऐसा नुक़सान उठाने को तैयार भी होता है। इन एक या दो दिवसीय हड़तालों से अगर कुछ होना होता तो बहुत पहले ही हो चुका होता। 1991 से ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें कुल 24 ऐसी हड़तालें कर चुकी हैं। इससे पिछले 35 सालों में क्या हासिल हुआ है? क्या अनौपचारिकीकरण रुका है? क्या ठेकाकरण रुका है? क्या हमारी काम और जीवन की स्थितियों में कोई बेहतरी आयी है? सभी मज़दूर भाई और बहन इन सवालों का जवाब जानते हैं। उल्टा हमारी स्थिति और बदतर हुई है, पूँजी के हमले और तेज़ हुए हैं।

इस बात को एक हालिया उदाहरण से ही देख लेते हैं। 12 फ़रवरी की

एकदिवसीय हड़ताल के तुरन्त बाद ही मोदी सरकार लेबर कोड को ज़ोर-शोर से लागू करने की घोषणा कर रही है। 17 फ़रवरी को भुवनेश्वर में हुए लेबर व एम्प्लॉयमेंट और इण्डस्ट्री सेक्रेटरीज़ के दो दिवसीय सम्मेलन में इसे त्वरित तौर पर लागू करने की योजनाएँ बनायी गयीं। यह सम्मेलन श्रम और रोज़गार मन्त्रालय द्वारा देशभर में अलग-अलग जगहों पर आयोजित किये गये पाँच स्थानीय सम्मेलनों की कड़ी में चौथा था। क्या यह उदाहरण दुश्मन के तेवर और उसके रुख़ को बताने के लिए काफ़ी नहीं है? क्या यह इस बात को पुष्ट करने के लिए काफ़ी नहीं है कि मोदी सरकार को इन रस्मी हड़तालों से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ने वाला है और वे अपने हमले को तेज़ करते जाने की तैयारी कर रहे हैं? क्या अब भी इन रस्मी कवायदों को जारी रखकर मज़दूर वर्ग पर हो रहे इन हमलों के ख़िलाफ़ लड़ा जा सकता है?

एक ऐसे समय में जब दुश्मन अपनी पूरी शक्ति के साथ हमला कर रहा हो और हमारे आख़िरी अधिकारों को भी ख़त्म कर देना चाहता हो, तब मज़दूर वर्ग को भी अपनी पूरी शक्ति के साथ उसका विरोध करना होगा। यह शक्ति है सभी अलग-अलग क्षेत्रों में काम करने वाले मज़दूरों-कर्मचारियों के एकता की और अनिश्चितकालीन आम हड़ताल की।

इस संघर्ष में संगठित क्षेत्र के मज़दूरों को पहलकदमी लेनी होगी और इसकी अगुवाई करनी होगी। संगठित क्षेत्र की मेहनतकश आबादी ने यह पहले भी कर दिखाया है। आज ज़रूरत है कि अपने जुझारू इतिहास से सीखते हुए लेबर कोड के ख़िलाफ़ संघर्ष को तेज़ करने की और इस बात का ऐलान करने की जब तक यह दमनकारी पूँजी-परस्त क़ानून वापस नहीं होता है तब तक एक साथ हर क्षेत्र में काम बन्द रहेगा।

केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों को और ग़रीब किसानों और ग्रामीण मज़दूरों की नुमाइन्दगी का दावा करने वाले यूनियनों व सगठनों को ऐसी आम हड़ताल का आह्वान करना चाहिए। व्यापक मज़दूर-मेहनतकश आबादी को इन संगठनों व यूनियनों पर ऐसी आम हड़ताल का ऐलान करने का दबाव बनाना चाहिए। हम एक बार फिर से केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों के नेतृत्व से दिली अपील करते हैं कि वे वक़्त की नज़ाकत और ज़रूरत को समझें। इस देश के मज़दूर वर्ग पर इससे बड़ा और कोई हमला नहीं हो सकता है और मोदी-शाह सरकार किसी भी तरह के रस्मी कवायद, ज़ुबानी जमाख़र्च, प्रतीकात्मक प्रदर्शन आदि करने से सुनने वाली नहीं है। उसे झुकाने के लिए आज अपने सबसे बड़े हथियारों में से एक यानी आम हड़ताल का इस्तेमाल करना ही होगा। इस वक़्त अगर केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें अनिश्चितकालीन आम हड़ताल की तरफ़ आगे बढ़ती हैं तो हम यह बात बिल्कुल दावे के साथ कह सकते हैं कि अन्य यूनियनें व संगठन भी उनका भरपूर साथ देंगे।

**अगर अब भी केन्द्रीय फ़ेडरेशन ये क़दम उठाने से घबरा जाते हैं या देरी करते हैं तो फिर उनकी नीयत और इरादों पर गम्भीर प्रश्न-चिह्न खड़े हो जायेंगे।** अगर वे संघर्ष के आज के ज़रूरी क़दम पर मज़दूरों को नेतृत्व देने के लिए तैयार नहीं हैं, उनकी आवाज़ को सुनने को तैयार नहीं है तो फिर ऐसे नेतृत्व का फ़ायदा क्या है? सिर्फ़ इतना ही नहीं कल को जब यह दमनकारी क़ानून लागू हो जायेगा तब क्या उसमें करोड़ों की सदस्यता वाली इन यूनियनों की चुप्पी और अकर्मण्यता भी इसकी ज़िम्मेदार नहीं होगी?

चार लेबर कोड के ख़िलाफ़ अब अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का आह्वान न करना प्राणघातक होगा। हम उम्मीद करते हैं कि केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनें इस बात को समझते हुए जल्द ही उपयुक्त क़दम उठायेंगी और देशव्यापी अनिश्चितकालीन आम हड़ताल की तरफ़ आगे बढ़ेंगी। मनरेगा के क़ानून को ख़त्म किये जाने और चार लेबर कोड जैसे ग़ुलामी के क़ानून के विरुद्ध संघर्ष का एकमात्र यही तरीक़ा हो सकता है, इससे कम कुछ भी फ़ासीवादी मोदी सरकार के हमलों का जवाब देने के लिये अपर्याप्त है।

# 12 फ़रवरी की "हड़ताल" से मज़दूरों को क्या हासिल हुआ?

(पेज 1 से आगे)

फ़ासीवादी सरकार है जो मज़दूर वर्ग की सबसे बड़ी शत्रु है, सबसे ज़्यादा तानाशाहाना और दमनकारी है। उसे तो ऐसी रस्मी क़वायदों से खुजली भी नहीं होने वाली है। ऊपर से, 2014 के बाद से तो हड़ताल की जगह काली पट्टी बाँधकर काम करने, कुछ मीटिंग-जुलूस आदि कर लेने को ही केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों का नेतृत्व हड़ताल बोलता रहा है।

देखने में यह आया कि पूरे देश में कुछ इलाकों को छोड़ दिया जाये तो केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों ने हड़ताल को सफल बनाने के लिए कोई ज़ोर ही नहीं लगाया। न तो ट्रेड यूनियन संगठनकर्ता व नेता इलाकों में भेजे गये, न काम बन्दी करवायी गयी, न ही मज़दूरों को विशाल तादाद में एकत्र किया गया। कई जगहों पर केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों से सम्बद्ध यूनियनों ने स्वयं ही काम बन्द किया, या आधा दिन काम बन्द किया। बाक़ी प्रमुख संगठित क्षेत्रों में, विशेषकर सरकारी क्षेत्रों, जैसे रेलवे, बैंक, बीमा, डाक, आदि में तो कई जगहों पर केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों ने ही काम बन्द करने से मना कर रखा था और यह कह रखा था कि काली पट्टी बाँधकर लंच टाइम में मेस में मीटिंग कर लो, या काम का वक़्त ख़त्म होने के बाद बाहर विरोध सभा या मीटिंग कर लो, इत्यादि।

**ऐसे में केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशन के नेतृत्व के साथियों से हमारा सवाल है: इससे आप क्या हासिल करने की उम्मीद करते हैं?** आज जब आज़ाद भारत की अब तक की सबसे ज़्यादा मज़दूर-विरोधी सरकार ने मज़दूर हक़ों पर अब तक का सबसे बड़ा हमला किया है, तो इस प्रकार की कार्रवाइयों से क्या आप मोदी सरकार द्वारा लेबर कोड वापस लिये जाने की उम्मीद करते हैं? यह तो आकाश-कुसुम की अभिलाषा के समान है। क्या आप यह समझ नहीं पा रहे हैं कि ऐसे विरोध प्रदर्शनों, सभाओं, आदि से, ज़ुबानी जमाख़र्च से और इसी प्रकार की दिखावटी चीज़ों को "हड़ताल" बोल देने से न तो मोदी सरकार पर कोई फ़र्क पड़ने वाला है और न ही समूचे पूँजीपति वर्ग पर? वे तो यही चाहते हैं कि मज़दूरों का प्रतिरोध इसी प्रकार के दिखावे और रस्म-अदायगी तक सिमटा रह जाये, मज़दूर वर्ग कभी अपनी शक्ति को न पहचाने, कभी वास्तविक अनिश्चितकालीन आम हड़ताल की ओर न जाये। **ऐसे में, केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों का नेतृत्व इतनी सीधी-सी बात क्यों नहीं समझ पा रहा है, जबकि रेल, सड़क परिवहन, डाक, बीएसएनएल, बैंक, बीमा, आदि तमाम बुनियादी उद्यमों में काम करने वाले मज़दूर और कर्मचारी ही समझ रहे हैं कि ऐसे एकदिनी कार्यक्रमों से कुछ नहीं होने वाला। यही वजह है कि कई जगह मज़दूरों व कर्मचारियों ने स्वयं ही इस एकदिनी क़वायद में हिस्सा नहीं लिया।**

'मज़दूर बिगुल' के साथियों ने क़रीब 11 राज्यों में संगठित और असंगठित क्षेत्रों दोनों में ही लाखों की तादाद में पर्चा वितरण किया, सैंकड़ों सभाएँ कीं, कई औद्योगिक क्षेत्रों को बन्द करवाने की मुहिम में भागीदारी की और उन्हें बन्द भी करवाया। यह करने की प्रक्रिया में हमारे सामने कुछ बातें स्पष्ट तौर पर प्रकट हुईं।

**पहली बात,** सार्वजनिक व निजी दोनों ही प्रकार के संगठित क्षेत्र के उद्यमों के मज़दूरों में केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों के नेतृत्व के प्रति भारी असन्तोष और मोहभंग की स्थिति में है। अधिकांश मज़दूरों व कर्मचारियों ने अपना दुख प्रकट करते हुए बताया कि नेतृत्व ही समझौतापरस्त हो गया है, लड़ना नहीं चाहता, बन्द दरवाज़ों के पीछे घुटने टेक देता है और इसीलिए रस्मअदायगी वाली एकदिनी हड़तालों या विरोध-प्रदर्शनों से आगे जाने को वह कभी तैयार ही नहीं होता। जब मज़दूर व कर्मचारी ही वास्तविक आम हड़ताल की माँग करते हैं, तो वह कहता है कि 'ऐसे नहीं होता है', 'धीरज से काम लेना पड़ता है', 'आम हड़ताल तो आखिरी हथियार होता है', 'सरकार दमन करेगी तो हम कैसे निपट पायेंगे', 'यूनियन नेतृत्व पर भरोसा करो, वह तुमसे ज़्यादा जानता है', आदि कहकर उन्हें चुप करवा दिया जाता है। नतीजतन, मज़दूरों व कर्मचारियों में निराशा का माहौल था। भारी संख्या में अधिकांश मज़दूरों व कर्मचारियों ने दिल्ली, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तराखण्ड, महाराष्ट्र, तेलंगाना, आन्ध्र प्रदेश आदि राज्यों में कहा कि हम भी समझते हैं कि बिना अनिश्चितकालीन आम हड़ताल के मोदी सरकार को लेबर कोड वापस लेने को मजबूर नहीं किया जा सकता है, लेकिन यूनियन नेतृत्व ऐसा करने को तैयार ही नहीं है तो हम क्या कर सकते हैं। अभी उन्हें कोई और विकल्प दिखायी नहीं पड़ रहा है। लेकिन यह याद रखना चाहिए कि विकल्प से विकल्प नहीं पैदा होता, विकल्पहीनता से ही नया विकल्प पैदा होता है। इसलिए इस भारी मज़दूर व कर्मचारी आबादी को यह समझना होगा कि दो ही रास्ते हैं : या तो केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों के नेतृत्व को मोदी सरकार के लेबर कोड के विरुद्ध अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का आह्वान करने को बाध्य किया जाय या फिर स्वयं स्वतन्त्र पहलक़दमी करते हुए, अपनी स्वतन्त्र यूनियनों का गठन करते हुए ऐसी हड़ताल की तैयारी की ओर आगे बढ़ा जाये। इसके अलावा क्या कोई तीसरा रास्ता हमारे पास है?

दूसरी बात यह सामने आयी कि आम तौर पर मज़दूर आबादी के एक अच्छे-ख़ासे हिस्से को ठीक ढंग से पता नहीं है कि मोदी सरकार के लेबर कोड उसे किस प्रकार से उजरती ग़ुलामी के सबसे बदतर रूपों की ओर धकेल देंगे और किस प्रकार वस्तुत: उनसे आठ घण्टे काम का हक़, पक्के काम पर पक्की नौकरी का हक़, डबल रेट से ओवरटाइम का हक़, संगठित होने का हक़ छीन लिया जायेगा। ऐसे मज़दूर साथी असंगठित क्षेत्र में अधिक मिले जिसकी एक वजह है: असंगठित क्षेत्र में कागज़ी तौर पर ये सारे हक़ क़ानूनी तौर पर मौजूद होने के बावजूद अधिकांश मज़दूरों को मिलते ही नहीं हैं। नतीजतन, उनमें लेबर कोड के ख़तरनाक चरित्र को लेकर जागरूकता की कमी और एक प्रकार की तटस्थता का भाव था। लेकिन अपने काम के भयंकर हालात के कारण जहाँ कहीं भी क्रान्तिकारी यूनियनों व संगठनों ने औद्योगिक क्षेत्र बन्द करवाये, उसमें असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों ने ज़्यादा उत्साह से भागीदारी की और वाकई काम बन्दी की। लेकिन इसके बावजूद मोदी सरकार के चारों लेबर कोड के बारे में असंगठित क्षेत्र की व्यापक कामगार आबादी के बीच सघन प्रचार की आवश्यकता है। लेकिन बात सिर्फ़ असंगठित मज़दूरों की नहीं है, बल्कि संगठित क्षेत्र के संगठित व असंगठित (ठेका, दिहाड़ी, कैजुअल) मज़दूरों के बीच भी इन श्रम संहिताओं को लेकर जागरूकता की कमी देखने में आयी। ऐसे में, मोदी सरकार के लेबर कोड के विरुद्ध संघर्ष का एक अहम कार्यभार इनके खतरनाक चरित्र से व्यापक मज़दूर आबादी को अवगत कराना भी है।

तीसरी बात, इसके लिए तमाम स्वतन्त्र व क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनों को साथ एक मंच पर आना चाहिए। इसके ज़रिये न सिर्फ़ भविष्य में हड़तालों को ज़्यादा कारगर बनाया जा सकता है, बल्कि केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों पर भी जुझारू अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का आह्वान करने का दबाव बनाया जा सकता है और ऐसा न करने की सूरत में संगठित क्षेत्र के मज़दूर वर्ग को अपने आपको उनसे स्वतन्त्र रूप में संगठित करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

हम फिर दुहराना चाहते हैं : अगर मज़दूर वर्ग मोदी सरकार की श्रम संहिताओं द्वारा लायी जाने वाली ग़ुलामी के ख़िलाफ़ प्रभावी ढंग से लड़ना चाहता है, तो उसे अनिश्चितकालीन आम हड़ताल को संगठित करने की ओर आगे बढ़ना होगा। जब तक देशस्तर पर इस प्रकार का प्रयास संगठित नहीं किया जा सकता, तब तक अलग-अलग कारखानों के स्तर पर, अलग-अलग सेक्टरों के स्तर पर और अलग-अलग इलाकों के स्तर पर मज़दूरों को संगठित होकर अपने श्रम अधिकारों के लिए लड़ना होगा। यह सच है कि इन क़ानूनों को रद्द करवाना मज़दूर वर्ग का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि कार्रवाई क़ानून से पहले आती है। अगर मज़दूर वर्ग संगठित होकर लड़ेगा, तो संघर्ष के परिणाम के निर्णय उसकी संगठित शक्ति और पूँजी की शक्ति के सन्तुलन से होगा। पहले भी इतिहास में ऐसी मिसालें मौजूद हैं जब क़ानून बाद में बने या बदले, लेकिन मज़दूरों ने लड़कर अपना हक़ हासिल किया। लेकिन यह भी सच है कि अगर क़ानूनी अधिकार समाप्त किये जाते हैं तो मज़दूरों के लिए अपने अधिकारों के लिए संघर्ष का रास्ता पहले से मुश्किल हो जाता है। जहाँ तक मोदी सरकार को उसकी चार श्रम संहिताओं को वापस लेने के लिए बाध्य करने का प्रश्न है, वह तभी हो सकता है जब देश के बड़े हिस्से में मज़दूर वर्ग एकजुट व संगठित तौर पर अनिश्चितकालीन आम हड़ताल को आयोजित करे।

**इसलिए हम केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशन के नेतृत्व से फिर अपील करेंगे कि वह रस्मअदायगी और दिखावटी प्रदर्शन कर उसे "हड़ताल" का नाम देने के बजाय वास्तविक संघर्ष का रास्ता अख्तियार करे और अनिश्चितकालीन आम हड़ताल का आह्वान करे।** पूरे देश में समस्त वास्तविक मज़दूर यूनियनें व मज़दूर संगठन उनका साथ अवश्य देंगे। मज़दूर वर्ग में बिगड़ती जीवन व कार्य-स्थितियों को लेकर ज़बर्दस्त असन्तोष है। आज वह निराशा व विकल्पहीनता के बोध से ग्रस्त ज़रूर है, लेकिन ऐसी कोई भी स्थिति स्थायी नहीं होती है, इतिहास इसका गवाह है। यदि केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशन संघर्ष का रास्ता नहीं चुनेंगे तो ऐसा नहीं कि मज़दूर वर्ग स्वयं संगठित होकर कभी संघर्ष का रास्ता नहीं चुनेगा। यदि वे रस्मअदायगी, औपचारिकताओं, सुधारवाद और अर्जीबाज़ी करने के रास्ते पर अटल रहेंगे, तो मज़दूर वर्ग भी इस समझौतापरस्ती को हमेशा स्वीकार करता रहेगा, ऐसा नहीं होगा।

केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों की शक्ति और प्रभाव पिछले तीन दशकों में लगातार सीमित होता रहा है और इसके लिए वे अपने नेतृत्व के अलावा किसी और को ज़िम्मेदार नहीं ठहरा सकते। जब-जब मज़दूरों के हक़ों पर बड़े हमले हुए तो उन्होंने मज़दूरों के प्रतिरोध आन्दोलन को सुधारवाद व "क़ानूनवाद" तथा अर्जीबाज़ी के गोल चक्कर में घुमा दिया। नतीजतन, मज़दूर आबादी भी उनपर से भरोसा खोती गयी। उसके पहले भी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों का संघर्ष अर्थवाद और वेतन-भत्तों में बढ़ोत्तरी की लड़ाई से आगे नहीं जाता था। लेकिन अब वे उतना भी नहीं करते। **आज नहीं तो कल यह प्रश्न मज़दूरों के दिमाग़ में आयेगा और आज भी आ रहा है कि ऐसे में ऐसी यूनियनों की आवश्यकता ही क्या है, जो कोई वास्तविक संघर्ष करने को तैयार ही नहीं है?** आज जब मोदी सरकार ने लेबर कोड के ज़रिये मज़दूर वर्ग पर आज़ाद भारत के इतिहास का सबसे बड़ा हमला किया है, तो यह मौक़ा है कि वे अपने इस आचरण को सुधार लें और एक वास्तविक संघर्ष का ऐलान करें।

क्रान्तिकारी शक्तियों को अपनी ताक़तों पर भरोसा करते हुए अपनी तैयारी लगातार जारी रखनी होगी, मज़दूरों को संगठित व असंगठित दोनों ही क्षेत्रों में संगठित करना होगा, उनकी जुझारू यूनियनें स्थापित करनी होंगी। असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की भारी तादाद उन्हें एक शक्ति प्रदान करती है, जबकि संगठित क्षेत्रों की पूँजीवादी व्यवस्था और राज्यसत्ता में रणनीतिक जगह संगठित क्षेत्र के मज़दूरों व कर्मचारियों को किसी भी आम अनिश्चितकालीन हड़ताल जैसे संघर्ष को संगठित करने के लिए अहम बनाती हैं। ये लेबर कोड संगठित व असंगठित दोनों ही क्षेत्र में मज़दूरों, यानी समूचे मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता पर ही हमला हैं।

लुब्बेलुबाब यह कि एकदिनी रस्मअदायगी और हड़ताल के नाम पर (या हड़ताल शब्द को ही कलंकित करते हुए) काली-पट्टी-विरोध प्रदर्शनों व मीटिंगों से मोदी सरकार के कानों पर जूँ भी नहीं रेंगने वाली। **श्रम संहिताओं को वापस लेने के लिए मोदी सरकार को बाध्य करने का एक ही रास्ता है: खूँटा गाड़कर अपने जायज़ हक़ों के लिए संघर्ष का आगाज़ करना, यानी, अनिश्चितकालीन आम हड़ताल को संगठित करना।**

## देश भर में “हिन्दू” सम्मेलनों एवं यात्राओं में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी

# भारतीय फ़ासीवाद के ‘नीचे से उठते चक्रवात’ का जीता-जागता उदाहरण

**● हिमांशु**

हालिया वर्षों में देश भर में आयोजित “हिन्दू” सम्मेलनों और शोभा यात्राओं की संख्या में अभूतपूर्व बढ़ोतरी देखी गयी है। फ़रवरी 2026 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) के वरिष्ठ पदाधिकारी ने यह घोषणा की कि आरएसएस के सौ वर्ष पूरे होने के मौक़े पर संगठन ने देशभर में एक लाख हिन्दू सम्मेलन आयोजित कराने का फ़ैसला लिया है। इन सम्मेलनों और यात्राओं की फेहरिस्त में सबसे चर्चित नवम्बर 2025 में धीरेन्द्र कृष्ण शास्त्री (जिसे लोग ‘बाबा बागेश्वर’ के नाम से भी जानते है) द्वारा आयोजित ‘सनातन एकता यात्रा’ थी। दिल्ली से वृन्दावन तक चली 10 दिन की इस यात्रा में कई मन्त्री, खिलाड़ी और अभिनेता शामिल हुए। पूरी यात्रा का प्रचार वैसे तो आध्यात्मिक तीर्थ यात्रा के तौर पर किया गया लेकिन यात्रा के दौरान “हिन्दू राष्ट्र” बनाने की फ़ासीवादी विचारधारात्मक परियोजना केन्द्र में दिखायी दी। हिन्दुओं के बीच “लव जिहाद”, “लैण्ड जिहाद” जैसे झूठे फ़ासीवादी प्रॉपगेण्डा को बार-बार उछाला गया, मुसलमानों की जनसंख्या का डर दिखाते हुए धीरेन्द्र शास्त्री व अन्य वक्ताओं द्वारा मुसलमान-विरोधी भड़काऊ भाषणों में हिन्दुओं की “संस्कृति और धर्म” बचाने की बातें कही गयी और मुसलमानों के खिलाफ़ दंगे एवं मॉब लिन्चिंग को सही ठहराते हुए उनके आर्थिक बहिष्कार का संकल्प लिया गया। इन्हीं “हिन्दू” सम्मेलनों और भाषणों में धार्मिक अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों के खिलाफ़ नफ़रती भाषणों की भरमार मौजूद होती है।

‘सेण्टर फॉर द स्टडी ऑफ ऑर्गनाइज्ड हेट’(CSOH) की एक रिपोर्ट के मुताबिक केवल 2025 में ही धार्मिक अल्पसंख्यकों के खिलाफ़ 1318 नफ़रती भाषणों की घटनाएँ दर्ज की गयी। यानी औसतन 4 घटनाएँ प्रति दिन ऐसी दर्ज हुई जिसमें नफ़रती भाषण दिये गये। यह उन्माद स्वतःस्फ़ूर्त नहीं है बल्कि इसे हिन्दुत्ववादी फ़ासीवादी ताक़तों द्वारा मिनट-दर-मिनट सुनियोजित तरीके से भड़काया जा रहा है। इसी रिपोर्ट के मुताबिक विश्व हिन्दू परिषद (विहिप) और बजरंग दल 289 नफ़रती भाषणों के कार्यक्रमों के आयोजनकर्ता थे। ऐसे कार्यक्रमों की सबसे अधिक तादात उत्तर प्रदेश (266), महाराष्ट्र (193), मध्य प्रदेश (172), उत्तराखण्ड (155) और दिल्ली (76) जैसे राज्यों में है। उन्मादी भाषण देने में कई “गौरक्षक कार्यकर्ता” (दक्ष चौधरी, अक्कू पण्डित, अभिषेक सिंह ठाकुर), हिन्दुत्व कट्टरपन्थी नेता (यति नरसिंहानन्द, भूपेन्द्र चौधरी) और भाजपा के सांसद तक शामिल हैं। 21 जनवरी को रायबरेली ज़िले में आयोजित ‘विराट हिन्दू सम्मेलन’ में ऋद्धिमा शर्मा (यह खुद को हिन्दुत्व कार्यकर्ता बताती है) कुछ ऐसा बयान देती है: “अगर वे तुम्हारे दो मारते है तो तुम उनके (मुसलमानों के) 100 लोगों को मारो... अगर वे तुम्हारी एक हिन्दू लड़की को भगाते है तो तुम उनकी 100 लड़कियों को भगाओ।” इसी सम्मेलन में खुशबू पाण्डे नाम की संघी महिला 1989 के भागलपुर दंगों (जिसमें 1000 मृतकों में से 900 मुस्लिम थे) को गौरवपूर्ण तरीके से याद करते हुए यह बात कहती है कि 15 मिनट के लिए जब भागलपुर में पुलिस हटी थी तो गंगा में तैरती एक भी लाश किसी हिन्दू की नहीं थी।

मुसलमानों के नरसंहार की बातें जब इस तरह खुले मंच से हज़ारों की भीड़ के सामने लाउडस्पीकर पर कही जाए तो ऐसे लोगों को ‘फ्रिन्ज’ (परिधिगत) कहना नासमझी और बेवकूफ़ाना ही होगा। भारतीय लिबरलों का एक हिस्सा आज भी इन्हें ‘फ्रिन्ज’ कहकर नज़रअन्दाज़ करने की बात करता है। इस तरह के उन्मादी आह्वान केवल हिन्दुत्ववादी कार्यकर्ताओं द्वारा ही नहीं बल्कि देश के प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी, गृहमन्त्री अमितशाह, उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री योगी आदित्यनाथ, असम के मुख्यमन्त्री हेमंत बिसवा शर्मा, उत्तराखण्ड के मुख्यमन्त्री पुष्कर सिंह धामी आदि के भाषणों में समय-समय पर दिये जाते रहे है। ‘पीपल्स यूनियन फॉर सिवल लिबर्टीज़ (PUCL) के राष्ट्रीय महासचिव डॉ वी. सुरेश ने ठीक ही टिप्पणी की है कि आज के फ़ासीवादी वक़्त में ‘फ्रिन्ज’ और ‘मुख्यधारा’ के बीच परस्पर सहजीवी (symbiotic) सम्बन्ध स्थापित हो चुका है। वैसे तो सच यह है कि ऐसा कोई फर्क फ़ासीवादियों के बीच करना ही बेमानी है। इस तरह के “हिन्दू” सम्मेलनों व यात्राओं का असल मक़सद साफ है: जनता के अपने असल मुद्दों को ग़ायब करो और इसी प्रक्रिया में साम्प्रदायिक उन्माद को भड़काते हुए हिंदुओं को “जागृत” करो!

### कौन है “जागृत हिन्दू”?

इन तमाम सम्मेलनों और यात्राओं का अगर हम विश्लेषण करें तो हम इनमें “जागृत हिन्दू” होने की बात को कई फ़ासीवादी नेताओं के भाषणों में पायेंगे। “जागृत हिन्दू” होने का यह मतलब बिलकुल नहीं है कि हिन्दू अपने शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, आवास के अधिकार जैसे सबसे बुनियादी मुद्दों के लिए जागृत हों; बल्कि “जागृत हिन्दू” का एकमात्र अर्थ है मुसलमानों के खिलाफ़ असीमित नफ़रत होना और अपनी धार्मिक साम्प्रदायिक पहचान से प्रस्थान करते हुए हर मसले को इसी नक़ली पहचान के चश्मे से देखना यानी अपने वर्गीय हितों और जीवन के वास्तविक मसलों को दरकिनार कर फ़ासीवादियों के साम्प्रदायिक प्रचार के चंगुल में फंसकर संघी नफरती राजनीति का वाहक बनना। इस नफ़रत को कभी “लव जिहाद” के मिथक से, कभी “गौहत्यारों” की छवि से और कभी मुसलमानों को “आक्रान्ता” और “बलात्कारी” बताकर उभारा जाता है। हिन्दुओं की घटती जनसंख्या दर का हवाला देकर मुसलमानों द्वारा भारत पर कब्ज़े का डर दिखाया जाता है जो दावा तथ्यों और वास्तविकता से मीलों दूर है। 25 जनवरी को कानपुर में हुए ‘हिन्दू सम्मेलन’ में मधुराम शरण शिवा नाम का कट्टर साधु यह कहता है: “हमें धर्म के लिए केवल मरने की ज़रूरत नहीं है बल्कि मारने की भी है”। इसी तरह 30 जनवरी को बागपत के ‘विराट हिन्दू सम्मेलन’ में कुख्यात यति नरसिंहानन्द इस्लाम को कैंसर बताते हुए हिन्दुओं का ‘आइएसआइएस’नुमा संगठन बनाने के लिए आह्वान करता है! इस तरह “हिन्दू खतरे में हैं” के नक़ली शोर और भ्रामक प्रचार का इस्तेमाल फ़ासीवादी ताक़तों द्वारा साम्प्रदायिक उन्मादी भीड़ इकट्ठा करने और दंगा भड़काने के लक्ष्य से किया जाता है।

### “शौर्य यात्राएँ” और फ़ासिस्ट आन्दोलन

मुसलमानों के खिलाफ़ नफ़रत पैदा करने में “शौर्य यात्राएँ” भी बेहद अहम भूमिका अदा करती है। ‘सिटीजेन्स जस्टिस एण्ड पीस’(CJP) के मुताबिक दिसम्बर 2024 में 21 ऐसी शोभा यात्राएँ आयोजित की गयीं जिनमें बाबरी मस्जिद विध्वंस का महिमामण्डन किया गया। 7 दिसम्बर को हरिद्वार में आयोजित यात्रा के दौरान विहिप नेता अनुज वालिया कहता है कि जिस तरह हमने अयोध्या का कलंक मिटाया था वैसे ही हरिद्वार के कलंक भी हमें मिटाने हैं! बाबरी मस्जिद विध्वंस का हवाला देकर काशी और मथुरा की मस्जिदों को तोड़ने का आह्वान इन्हीं रैलियों में ज़ोर-शोर से होता है। “अयोध्या तो बस झाँकी है, काशी-मथुरा बाक़ी है” जैसे नारों की साम्प्रदायिक गूँज से ये नफरती यात्राएँ पटी पड़ी रहती हैं। ऐतिहासिक तौर पर भी इस प्रकार की धार्मिक (वास्तव में साम्प्रदायिक फ़ासीवादी) यात्राएँ भाजपा-आरएसएस के फ़ासीवादी प्रोजेक्ट का अहम और अभिन्न अंग रही हैं। 1980 के दशक के उत्तरार्ध में जब फ़ासीवादी प्रतिक्रियावादी आन्दोलन एक उभार की शक्ल ले रहा था तब ऐसी यात्राओं के ज़रिये ही साम्प्रदायिक भीड़ निर्मित की गयी थी। आडवाणी के नेतृत्व में यह अपने चरमोत्कर्ष पर ‘रथ यात्रा’ के रूप में पहुँचता है और 1992 के बाबरी मस्जिद विध्वंस को अंजाम देता है। फ़ासीवादी उभार की ऐसी ही परिघटना को प्रख्यात चिंतक ऐज़ाज अहमद ‘नीचे से उठते हुए चक्रवात’ की संज्ञा देते हैं। वर्तमान में भी हम यह देख सकते हैं कि ऐसी कई यात्राओं के गंतव्य स्थान अयोध्या, काशी, मथुरा या वृन्दावन जैसे संवेदनशील स्थान रखे गए हैं। इनके ज़रिये आम जनता के बीच साम्प्रदायिक उन्माद को तेज़ी और तीखेपन के साथ भड़काने की सुनियोजित फ़ासीवादी साज़िश जारी है।

### फ़ासिस्ट सत्ता के संरक्षण में फैलता साम्प्रदायिक उन्माद

इन सम्मेलनों और यात्राओं में ऐसे भाषण दिये जाते हैं जो सीधे तौर पर संवैधानिक मानकों और न्यायिक धाराओं के खिलाफ़ जाते है। लेकिन बिरले ही हम पाते हैं कि ऐसे किसी व्यक्ति पर कोई क़ानूनी कार्रवाई हुई हो। यह यही दर्शाता है किी आज के हिन्दुत्व फ़ासीवादी ताक़तों ने ‘अन्दर से’ सत्ता के अलग-अलग निकायों पर क़ब्ज़ा किया है और इनलिए इनकी गुण्डा वाहिनियों को सत्ता का संरक्षण प्राप्त है। फ़ासीवादी सत्ता भी इन संघी गुण्डा वाहिनियों के ज़रिये ही समाज में साम्प्रदायिक ज़हर बेहद बेशर्मी से फैलाने का प्रयास करती है। सत्ता की शह के दम पर ही ये हिंदुत्ववादी भाषणों और नारों से आगे बढ़कर दुकानों में घुस-घुसकर मुसलमान दुकानदारों के साथ बदतमीज़ी व हिंसा जैसे कुकृत्य कर पाते हैं। फ़ासीवादी सत्ता की ताक़त ही इन्हें वह कूवत देती है जिसके दम पर ये गुण्डे राह चलते मुसलमानों से जबरन ‘वन्दे मातरम’ बुलवाते हैं, कश्मीरी शॉल बेचने वालों को कश्मीरी बोलने पर उत्तराखण्ड में पीट-पीटकर अधमरा कर देते हैं और आवामी एकता की मिसाल देने वाले कोटद्वार के दीपक के घर के बाहर 150-200 की भीड़ लाकर साम्प्रदायिक और उन्मादी नारेबाज़ी करते हैं।

### आवामी एकजुटता ही है साम्प्रदायिक फ़ासीवाद का एकमात्र जवाब

इस बात में कोई दो-राय नहीं है कि सत्ता के दम पर आगे बढ़ रहे हिन्दुत्ववादी गुण्डे और संगठन बेहद सुनियोजित तरीके से साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति को समाज में पैठाने की कोशिश कर रहे है। इनसे लड़ने के लिए न्यायिक प्रक्रिया, किसी भी पूँजीवादी चुनवबाज़ पार्टी अथवा पुलिस-प्रशासन पर निर्भर रहने का मतलब है शेखचिल्ली का सपना देखना। आज इनके ख़िलाफ़ लड़ने की एकमात्र कारगर शक्ति आम जनता की फौलादी एकजुटता ही है। देशभर में आयोजित सैकड़ों “हिन्दू” सम्मेलनों ने जितना साम्प्रदायिक उन्माद भड़काया होगा उससे कहीं अधिक साम्प्रदायिक सौहार्द बनाने का काम उत्तराखण्ड के दीपक की उस वाइरल वीडियो ने किया जिसमें वह एक बुज़ुर्ग मुसलमान दुकानदार के लिए बजरंग दल के गुण्डों से भिड़ गया और अपना नाम “मोहम्मद दीपक” बताया। वही हिन्दुत्ववादी ऋद्धिमा शर्मा जो एक हिन्दू की मौत के बदले 100 मुसलमानों की जान लेने की बात करती है जब अपनी साम्प्रदायिक राजनीति लेकर राजस्थान के गोगामेड़ी मन्दिर पहुँचती है तो उसे श्रद्धालुओं द्वारा ही हड़काते हुए बाहर खदेड़ा जाता है। देश के कई हिस्सों से ऐसी वीडियो सामने आ रही हैं जहाँ आम लोग संघियों की साम्प्रदायिक राजनीति के खिलाफ़ खड़े हो रहे हैं। यह बताता है कि तमाम कोशिशों के बावजूद इन हिन्दुत्ववादी फ़ासीवादी संगठनों की साम्प्रदायिक राजनीति लगातार मुँह की खा रही है। आज ज़रूरत है कि इन तमाम स्वतःस्फ़ूर्त विरोध की घटनाओं को, जोकि बेहद सकारात्मक परिघटना है, सचेतन तौर पर पूरी फ़ासीवादी राजनीति के ख़िलाफ़ क्रान्तिकारी मोड़ देना। इसलिए आज भाजपा और संघ परिवार की साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति का पर्दाफाश सड़कों पर उतरकर जनता के बीच करना क्रान्तिकारी शक्तियों का सर्वोपरि कार्यभार है। ज़रूरत है कि उन्हें संघ के “चाल-चेहरा-चरित्र” की सच्चाई से अवगत कराया जाये और फ़ासीवादी राजनीति और विचारधारा की असलियत बतायी जाये। साथ ही, सच्चे सेक्युलर विचारों पर आधारित एक जुझारू साम्प्रदायिकता-विरोधी जनआन्दोलन खड़ा किया जाये जो फ़ासीवादी साम्प्रदायिक ताक़तों की नफरत और हिंसा का माकूल जवाब सड़कों पर उतरकर दे। इसके साथ ही लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार और आवास के अधिकार की अपनी ठोस, बुनियादी व वास्तविक माँगों पर संगठित करते हुए समूची पूँजीवादी व्यवस्था को कठघरे में खड़ा किया जाये।

# कोटद्वार (उत्तराखण्ड) में संघी उत्पात और फ़ासिस्ट साम्प्रदायिक राजनीति का कारगर प्रतिरोध

**● प्रसेन**

"मेरा नाम मोहम्मद दीपक है। मैंने जानबूझकर अपना नाम 'मोहम्मद दीपक' बताया क्योंकि इन्सान की पहचान धर्म से नहीं होनी चाहिए।... शहर का आधा हिस्सा मेरे साथ है, लेकिन अच्छे काम पर लोग तालियाँ नहीं बजाते। ईमानदारी की एक क़ीमत चुकानी पड़ती है। लेकिन मैं पीछे हटने वाला नहीं हूँ चाहे इसकी क़ीमत मुझे अपनी जान से चुकानी पड़े।"

ऊपर दिया गया बयान उत्तराखण्ड के कोटद्वार में रहने वाले जिम ट्रेनर दीपक कुमार कश्यप का है। यह बयान न केवल फ़ासीवादी संघ परिवार की साम्प्रदायिक नफ़रत की राजनीति के ख़िलाफ़ देशभर के प्रगतिशील और सच्चे धर्मनिरपेक्ष लोगों की भावना का प्रतिनिधित्व करता है बल्कि इस समझदारी की आज के वक़्त में सबसे ज़्यादा ज़रूरत है।

ग़ौरतलब है कि पिछली 26 जनवरी को उत्तराखण्ड के कोटद्वार में उत्तराखण्ड के मुख्यमन्त्री पुष्कर सिंह धामी का जुलूस निकलने वाला था। उसके पहले बजरंग दल के गुण्डे एक 70 वर्षीय बुज़ुर्ग मुस्लिम दुकानदार से उनकी दुकान के नाम 'बाबा स्कूल ड्रेस एण्ड मैचिंग सेण्टर' से 'बाबा' शब्द हटाने पर ग़ैरक़ानूनी दबाव बना रहे थे। फ़ासिस्टों के सत्ता में आने के बाद संघी गुण्डों को जितनी छूट मिली है और ऐसी गुण्डागर्दी में पुलिस प्रशासन का उन्हें जितना साथ मिलता है उसके मद्देनज़र वह बुज़ुर्ग दुकानदार 30 साल पुरानी दुकान का नाम बदलने के लिए बस कुछ वक़्त माँग रहे थे, जिसे 'देने के लिए' बजरंग दल के गुण्डे तैयार नहीं थे। वहाँ मौजूद दीपक कश्यप और विजय रावत ने बजरंग दल की इस गुण्डागर्दी का विरोध किया। तब बजरंग दल के गुण्डे दीपक कश्यप से उनका नाम पूछने लगे। इस पर दीपक ने बजरंग दल की साम्प्रदायिक मानसिकता का जवाब देते हुए जानबूझकर अपना नाम 'मोहम्मद दीपक' बताया क्योंकि वे धार्मिक आधार पर ग़ैरक़ानूनी तरीक़े से दुकानों और लोगों को टारगेट कर रहे थे। दीपक कश्यप के दृढ़ रवैये को देखते हुए बजरंग दल के गुण्डे उस समय वहाँ से पूँछ दबाकर निकल लिए। यह वीडियो वायरल हो गया। उसके बाद 31 जनवरी को बजरंग दल दीपक कुमार को 'सबक' सिखाने के लिए विभिन्न इलाक़ों से एक भीड़ जुटाकर उनके जिम पर पहुँच गया। और अपने असली चरित्र के मुताबिक़ बजरंग दल के गुण्डों ने दीपक कुमार से अभद्रता करने की कोशिश की, उनको और उनके परिवार वालों को गालियाँ दीं। यही नहीं दीपक का साथ देने वाले रुद्रपुर के मोहित के जिम के बोर्ड पर कालिख पोती। इस दिन उत्तराखण्ड का मुख्यमन्त्री 'धामी' भी कोटद्वार में ही मौजूद था।

अब सवाल यह है कि इस पूरे घटनाक्रम में पुलिस-प्रशासन की भूमिका क्या थी? 31 जनवरी को पुलिस ने विश्व हिन्दू परिषद (विहिप) के सदस्य गौरव कश्यप और बजरंग दल के सदस्य कमल पाल की शिकायत के बाद दीपक कुमार और विजय रावत के ख़िलाफ़ एफ़आईआर दर्ज की। उन पर आपराधिक धमकी, जानबूझकर चोट पहुँचाने, दंगा करने और शान्ति भंग करने का आरोप लगाया गया है। दीपक और विजय रावत पर यह भी आरोप लगाया कि इन्होंने पैसे, घड़ियाँ और फोन छीन लिया और डराने-धमकाने के लिए जातिवादी गालियाँ दीं। इसके अलावा विहिप और बजरंग दल के इन लम्पटों का कहना है कि वे घर-घर "जागरूकता" फैलाने गए थे! दीपक कुमार उर्फ़ अक्की, विजय रावत और अन्य के ख़िलाफ़ भारतीय न्याय संहिता की धारा 115(2), 191(1), 351(2) और 352 के तहत मुक़दमा दर्ज किया गया है। एक तरफ़ दीपक और विजय पर झूठी नामजद एफ़आईआर की गयी, वहीं दूसरी तरफ़ बजरंग दल के गुण्डों का अता-पता होने के बावजूद 30-40 "अज्ञात" लोगों पर शान्ति भंग करने के आरोप में एफआईआर दर्ज की गयी। इन "अज्ञातों" के फोटो और वीडियो मौजूद हैं। यही नहीं ये "अज्ञात" पुलिस के सामने दीपक के घर पर हुड़दंग कर रहे थे और गालियाँ दे रहे थे। पुलिस ने दीपक को उस जगह से हटा दिया जबकि बजरंग दल के गुण्डों को घण्टों हुड़दंग करने के लिए छुट्टा छोड़ दिया गया।

कुल मिलाकर देखा जाये तो पुलिस प्रशासन पूरी बेशर्मी के साथ बजरंग दल के गुण्डों का साथ दे रही थी। वैसे यह कोई एक जगह की बात नहीं है। सत्ता में आने के बाद से फ़ासिस्टों ने पुलिस प्रशासन से लेकर न्यायपालिका, चुनाव आयोग, ईडी, सीबीआई आदि सभी संस्थाओं पर अन्दर से कब्ज़ा कर लिया है। ऐसे में उत्तराखण्ड की घटना में पुलिस ने वही किया जो फ़ासिस्ट चाहते थे। इसी कारण पूरे देश में 'बजरंग दल', 'हिन्दू रक्षा दल' और 'अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद' के गुण्डे चारों ओर घूम-घूमकर गुण्डागर्दी कर रहे हैं और उन्हें किसी का कोई डर नहीं है। पहले तो ग़ैरक़ानूनी तरीक़े से मुस्लिम दुकानदार को दुकान के नाम से 'बाबा' शब्द हटाने के लिए धमकाते हैं, फिर दीपक कुमार को सबक सिखाने के लिए दीपक के जिम के सामने खुलेआम हुड़दंग करते हैं, लेकिन नामजद एफ़आईआर दीपक कुमार और उनके साथी पर होती है! जिस देश के प्रधानमन्त्री, गृहमन्त्री, मुख्यमन्त्री खुलेआम मुस्लिमों के ख़िलाफ़ ज़हर उगलते हों, उनके चित्र पर बन्दूक से निशाना साधते हों (असम के मुख्यमन्त्री) और उच्चतम न्यायालय तक के पास इस पर 'विचार करने का समय न हो' वहाँ और किस चीज़ की उम्मीद की जा सकती है? मतलब साफ़ है कि इन साम्प्रदायिक ताक़तों को शासन-प्रशासन का पूरी तरह संरक्षण प्राप्त है। उत्तराखण्ड को फ़ासिस्टों ने लम्बे समय से साम्प्रदायिकता की प्रयोगशाला बनाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है। इस घटना के कुछ समय पहले ही विकासनगर में दो कश्मीरी नौजवानों के ऊपर हमले हुए और हिन्दुओं की धार्मिक जगहों पर मुस्लिमों को जाने से प्रतिबन्धित करने का मामला सामने आया था।

लेकिन बात यहीं ख़त्म नहीं हो जाती। इस पूरे घटनाक्रम से फिर से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि **फ़ासिस्ट संघ परिवार की साम्प्रदायिक साज़िश की पोल-पट्टी खोलते ही 'हिन्दू' 'हिन्दू' नहीं रह जाता। वह "ग़द्दार" हो जाता है और हिन्दू धर्म के झण्डाबरदारों द्वारा उसकी हत्या की सुपारी बाँटी जाने लगती है।** यानी या तो आप फ़ासिस्टों के हर झूठ, नफ़रत की राजनीति में उनका साथ दीजिए या चुप रहिए! अगर आप इनकी असलियत को उजागर करेंगे तो आपको 'हिन्दू' से 'ग़द्दार' होने में सेकण्ड भी नहीं लगेंगे! दीपक के साथ भी यही हुआ। दीपक ने बजरंग दल की गुण्डागर्दी पर ज्यों ही उँगली उठायी (जो कि हर इंसाफ़पसन्द इन्सान का फ़र्ज़ है!) वैसे ही दीपक के नाम सुपारी दी जाने लगी। ग़ौरतलब है कि 'हिन्दू रक्षा दल' के अध्यक्ष ललित शर्मा ने दीपक का सिर कलम कर लाने वाले को 5 लाख 51 हज़ार रुपये का इनाम देने का ऐलान किया। 12 फ़रवरी को एक भीड़ भी इकट्ठी की गयी थी, हालाँकि मामले के तूल पकड़ने के कारण पुलिस ने उस जुलूस को "रोक" दिया था। फिर एक और वीडियो आया जिसमें उत्कर्ष सिंह नाम का एक व्यक्ति माथे पर तिलक लगाये हुए, हाथ में नोटों की गड्डियाँ पकड़े नज़र आता है जो मोहम्मद दीपक को मारने और उसे सनातन धर्म का 'पाठ' पढ़ाने वाले को 2 लाख रुपये देने की घोषणा कर रहा होता है। ये बात अलग है कि फ़ासिस्ट कायर होते हैं, मुकदमा दर्ज़ होते ही ये गिड़गिड़ाने लगा कि उसने वायरल होने के लिए ऐसा वीडियो बनाया था!

लेकिन इस पूरे घटनाक्रम का एक बहुत महत्वपूर्ण पहलू यह है कि बजरंग दल की गुण्डागर्दी के सामने दीपक कुमार के दृढ़तापूर्वक खड़े होने के बाद देश के युवाओं, वकीलों, पत्रकारों और आम लोगों की एक बड़ी संख्या फ़ासिस्टों की साम्प्रदायिक राजनीति के बरक्स 'मोहम्मद' दीपक के साथ खड़ी हो गयी। यह देश की क्रान्तिकारी राजनीति के लिए एक अच्छा संकेत है। बजरंग दल के गुण्डों की तो केवल दीपक के तनकर खड़े हो जाने से फूँक सरक गयी थी, लेकिन बड़ी संख्या में लोगों के मुखर समर्थन मिलने से हिन्दू धर्म के तथाकथित झण्डाबरदार संगठन भी फिलहाल बिल में घुसे नज़र आ रहे हैं।

वास्तव में, फ़ासिस्टों ने सत्तारोहण के बाद से आम मेहनतकश जनता को तबाही-बर्बादी के दलदल में धकेल दिया है। गाँवों-शहरों की आम मेहनतकश जनता तेज़ रफ़्तार से बढ़ती बेरोज़गारी, महँगाई, भुखमरी, टैक्सों के पहाड़ के नीचे कराह रही है। मज़दूरों की मेहनत की लूट की खुली छूट देकर मुट्ठीभर पूँजीपतियों के मुनाफ़े की दर बरक़रार रखने के लिए कुख्यात 'चार लेबर कोड' मोदी सरकार द्वारा लागू कर दिये गये हैं। पूँजीपतियों के मुनाफ़े की हवस पूरी करने के लिए प्रकृति को दाँव पर लगा दिया गया है। सरकारी विभागों पर निजीकरण का पाटा चलाया जा रहा है। जनान्दोलनों को कुचलने के लिए काले क़ानूनों और खुले पुलिसिया दमन का सहारा लिया जा रहा है। लोगों के असन्तोष को सत्ता में बने रहने की बाधा बनने से रोकने के लिए 'केचुआ' के सहारे चुनाव में धाँधली और एसआईआर का खेल फ़ासिस्टों द्वारा खेला जा रहा है। वहीं आम मेहनतकश जनता के वास्तविक हितों के आधार पर बनने वाली उनकी क्रान्तिकारी एकजुटता को तोड़ने के लिए फ़ासिस्ट देशभर में बहुत निरन्तरता और योजनाबद्धता के साथ साम्प्रदायिक उन्माद को बढ़ाने वाली घटनाओं को अंजाम दे रहे हैं ताकि लोग गलत जगह उलझे रहें।

लेकिन फ़ासिस्टों की साम्प्रदायिक राजनीति अब देश की एक बड़ी आबादी को समझ में आ रही है। कोटद्वार की घटना में एक बड़ी संख्या में लोगों का दीपक कुमार का साथ देना इस बात को साबित करता है। लेकिन केवल इतने से साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति का मुकाबला नहीं किया जा सकता। ज़रूरत इस बात की है कि देश की व्यापक मेहनतकश जनता के बीच सच्ची धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों का सघन और निरन्तर प्रचार संगठित किया जाये। मेहनतकश जनता अपनी क्रान्तिकारी विरासत का पुनःस्मरण करते हुए भगतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक़ उल्ला खान, शहीद उधम सिंह (जिन्होंने जाति-धर्म के झगड़ों के बरक्स जनता की एकजुटता की मिसाल के लिए अपना नाम 'राम मोहम्मद सिंह आज़ाद' रख लिया था।), सावित्रीबाई फुले-फ़ातिमा शेख के विचारों को जाने और अपनाये। मेहनतकश जनता को यह बात समझनी ही होगी कि फ़ासिस्टों को 'हिन्दू हित', 'राष्ट्र हित' से कुछ भी लेना-देना नहीं है बल्कि जनता को बाँटकर, लोगों में भ्रम फैलाकर इन्हें पूँजीपतियों की तिजोरी भरनी है। इन फ़ासीवादी गुण्डों की गुण्डागर्दी का कारगर व त्वरित जवाब तभी दिया जा सकता है जबकि मेहनतकश जनता गाँवों-कस्बों-शहरों में अपने को जुझारू तौर पर संगठित करे। मेहनतकश जनता अपने असली दुश्मनों यानी पूँजीपतियों व वर्तमान फ़ासिस्टों से तभी माकूल लड़ाई लड़ सकती है, जबकि वह अपने बीच पहले से बनी और शासक वर्ग द्वारा मज़बूत की जा रही जाति-धर्म के बँटवारे की दीवार गिरा दे।

---

"लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब, मेहनतकशों व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं। इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथों में लेने का प्रयत्न करो। इन यत्नों से तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी। "

**– भगतसिंह** ('साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' लेख से )

"इन दंगों में वैसे तो बड़े निराशाजनक समाचार सुनने में आते हैं, लेकिन कलकत्ते के दंगों में एक बात बहुत ख़ुशी की सुनने में आयी। वह यह कि वहाँ दंगों में ट्रेड यूनियन के मज़दूरों ने हिस्सा नहीं लिया और न ही वे परस्पर गुत्थमगुत्था ही हुए, वरन् सभी हिन्दू-मुसलमान बड़े प्रेम से कारखानों आदि में उठते-बैठते और दंगे रोकने के भी यत्न करते रहे। यह इसलिए कि उनमें वर्ग-चेतना थी और वे अपने वर्गहित को अच्छी तरह पहचानते थे। वर्गचेतना का यही सुन्दर रास्ता है, जो साम्प्रदायिक दंगे रोक सकता है।"

**– भगतसिंह**

('साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' लेख से )

"...जिन्होंने भी फ़ासिस्टों की परेडें देखी हैं, वे जानते हैं कि ये परेडें उन नौजवानों की होती हैं, जिनकी रीढ़ें रोग से सूजी हुई हैं, जिनके शरीरों पर चकत्ते पड़े हुए हैं और जो क्षयग्रस्त हैं, किन्तु जो बीमार आदमियों के उन्माद से जीवित रहना चाहते हैं और जो ऐसी किसी भी चीज़ को अपनाने के लिए तैयार रहते हैं जो उनके विषाक्त रक्त की सड़ाँध को बिखेरने की उन्हें आज़ादी देती है।"

**– मक्सिम गोर्की**

# यूजीसी विनियम, 2026: सही क्रान्तिकारी अवस्थिति क्या होनी चाहिए?

● अविनाश

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) के द्वारा एक राजपत्र अधिसूचना के माध्यम से विगत 13 जनवरी को एक नयी नियमावली 'उच्च शिक्षण संस्थानों में समता के संवर्धन हेतु विनियम, 2026' जारी की गयी। इन नये नियमों का उद्देश्य उच्च शिक्षण संस्थानों में होने वाले जातिगत उत्पीड़न और सामाजिक भेदभाव को दूर करना बताया गया। इन नियमों के द्वारा जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा, लिंग और विकलांगता के आधार पर होने वाले भेदभाव के खात्मे की बात की गयी। इन नियमों के आने के साथ ही देश भर में बड़ी संख्या में लोग इनके समर्थन और विरोध में जुट गये। एक तरफ़ अस्मितावादी राजनीति के झण्डाबरदार इन नियमों का स्वागत करने और मोदी सरकार को धन्यवाद देने में जुट गये। वहीं दूसरी तरफ़, संघ परिवार के बगलबच्चा संगठनों और लग्गु-भग्गुओं ने इन नियमों के दुरुपयोग की सम्भावना जताते हुए और इसे सवर्णों पर हमला बताते हुए इसके ख़िलाफ़ जगह-जगह विरोध प्रदर्शन शुरू कर दिया। कांग्रेस समेत तमाम अन्य पूँजीवादी पार्टियों के नेताओं ने अपने-अपने वोटबैंक को ध्यान में रखते हुए इन नियमों के समर्थन और विरोध की राजनीति शुरू कर दी। स्थिति यह थी कि एक ही पार्टी का एक नेता इन निर्देशों का समर्थन तो दूसरा इनका विरोध कर रहा था!

इस घमासान के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने इन नियमों पर रोक लगा दी। इन नियमों के दुरुपयोग होने की आशंका जताते हुए कोर्ट ने 2012 के पुराने नियम को ही प्रभावी करने का निर्देश दिया है। पहले मजबूरी में इन नये नियमों को यूजीसी द्वारा अधिसूचित कराना और फिर कोर्ट के हस्तक्षेप से इन नियमों पर रोक लगा देने की फ़ासीवादी चाल ने भाजपा के असली चेहरे को बेनकाब कर दिया। लेकिन भाजपा और संघ परिवार ने अपनी फ़ासीवादी राजनीति को परवान चढ़ाने के लिए इस मौक़े को भुनाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। कोर्ट द्वारा रोक लगवाने के बाद भी न केवल इनके तमाम पिछलग्गू संगठनों ने इसके ख़िलाफ़ माहौल बनाना, प्रदर्शन करना, बयानबाज़ी करना जारी रखा बल्कि जहाँ कहीं भी इस सवाल पर किसी भी तरह की परिचर्चा, बातचीत अथवा कार्यक्रम आयोजित किये गये, उनपर हमला करने और इसे मुद्दा बनाकर जातिगत ध्रुवीकरण करने की हर सम्भव कोशिश की। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में दिशा छात्र संगठन के कार्यकर्ताओं द्वारा इन नियमों के विभिन्न पहलुओं पर चल रही स्वस्थ परिचर्चा पर अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् और बजरंग दल के कार्यकर्ताओं ने हमला किया और नारेबाज़ी करने का फ़र्ज़ी आरोप लगाते हुए दिशा के कार्यकर्ताओं के साथ मारपीट की। इसी तरह दिल्ली के जन्तर-मन्तर पर चल रहे प्रदर्शन, दिल्ली विश्वविद्यालय में छात्रों के प्रदर्शन पर भी एबीवीपी के कार्यकर्ताओं और फ़ासीवादी गुण्डों ने हमला किया।

ग़ौरतलब है कि मौजूदा फ़ासीवादी सत्ता के पिछले 11 सालों में शायद यह पहला मौक़ा है जब सुप्रीम कोर्ट ने किसी नियम पर रोक लगायी हो। यह वही कोर्ट है जिसने जनता के प्रतिरोध को नज़रअन्दाज़ करते हुए बीएनएस, बीएनएसएस, बीएसए, राजद्रोह के क़ानूनों में बदलाव, यूपीकोका, मकोका जैसे क़ानूनों को लागू होने दिया और फ़ासिस्टों के हाथों में जनता के प्रतिरोध को कुचलने की खुली शक्ति दे दी और इन काले क़ानूनों और और सीएए-एनआरसी और अनुच्छेद 370 हटाये जाने जैसे फ़ासीवादी क़दमों के ख़िलाफ़ जनता के प्रतिरोध को नज़रअन्दाज़ किया। उस वक़्त इस देश के सर्वोच्च न्यायालय को इन क़ानूनों के दुरुपयोग का भय नहीं सताया था! भाजपा सरकार अपने हित में चुनाव आयोग, ईडी और सीबीआई का खुला दुरुपयोग कर रही है लेकिन यह सब कोर्ट की आँखों से "ओझल" है। दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षक जीएन साईं बाबा, प्रोफ़ेसर हैनी बाबू, फादर स्टेन स्वामी जैसे सैकड़ों शिक्षकों, छात्रों, राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ताओं को बिना कोई आरोप साबित हुए, क़ानूनों का दुरुपयोग करके सालों-साल जेल में क़ैद रखा गया। इनमें से अभी भी कितने जेलों में क़ैद हैं और कितनों की न्यायिक हत्याएँ की जा चुकी है। क़ानूनों के दुरुपयोग की वजह से ही बिल्किस बानों के बलात्कारी रिहा हो जाते हैं, रसूख़दार भाजपा विधायक कुलदीप सिंह सेंगर को बेल मिल जाती है, रामरहीम जैसा बलात्कारी बार-बार पैरोल पर बाहर आ जाता है। ऐसा नहीं है कि ये सभी मामले कोर्ट की निगाह में नहीं हैं। परन्तु इन मामलों में आज तक कोर्ट द्वारा न तो कोई हस्तक्षेप ही किया गया और न ही कोई कारगर क़दम ही उठाये गये हैं। लेकिन किसी सम्भावित दुरुपयोग की सम्भावना के आधार पर एक ऐसे ज़रूरी नियम पर रोक लगा दी गयी है जो सालों से परिसरों में बढ़ते जातिगत, धार्मिक, क्षेत्रीय, भाषाई, लैंगिक, जेंडरगत और विकलांग उत्पीड़न को रोकने की दिशा में बेहद आवश्यक क़दम है।

देश भर के परिसरों में जाति, धर्म और लिंग के आधार पर उत्पीड़न या भेदभाव कोई अदृश्य कल्पना नहीं हैं बल्कि हमारे समाज की एक जीती-जागती सच्चाई है। यूजीसी द्वारा संसदीय समिति और सुप्रीम कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत आँकड़ों से पता चलता है कि देशभर के विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में जाति आधारित भेदभाव की शिकायतों में पिछले पाँच वर्षों में 118.4% की वृद्धि हुई है। यदि हम पूरे समाज की बात करें तो सरकारी संस्था एनसीआरबी के आँकड़ों के अनुसार ही देश में 2013 से लेकर 2023 तक के 10 सालों में जातीय शोषण और उत्पीड़न के मामलों में तक़रीबन 46 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। जातिवादी उत्पीड़न के मामलों की संख्या जहाँ 2013 में 39,408 थी वहीं 2023 में इनकी संख्या 57,789 हो गयी। भारतीय समाज की जिस किसी को ज़रा सी भी समझ है और उन्होंने पड़ताल किया है तो वह इस बात को अच्छी तरह से समझ सकता है कि इन मामलों के झूठे होने की सम्भावना से अधिक यह सम्भावना ज़रूर है कि बहुत से मामले दर्ज़ ही नहीं हो पाये होंगे क्योंकि आर्थिक-सामाजिक और राजनीतिक ताक़त तथाकथित उच्च जातियों के सम्पन्न हिस्सों के पास ही तो केन्द्रित है।

दरअसल रोहित वेमुला, पायल तडवी और दर्शन सोलंकी की सांस्थानिक हत्या के बाद उपजे सवालों और सालों से परिसरों में चले आ रहे भेदभाव के ख़िलाफ़ सड़कों पर उभरे प्रतिरोध के बाद यूनिवर्सिटी और कॉलेजों में भेदभाव को रोकने के लिए यूनिवर्सिटी ग्राण्ट्स कमीशन को नयी गाइडलाइंस बनाने के लिए मजबूर होना पड़ा था। इन गाइडलाइंस की सिफ़ारिश भी इन सांस्थानिक हत्याओं के बाद दायर की गयी एक याचिका के आधार पर कोर्ट द्वारा गठित एक संसदीय समिति द्वारा की गयी थी। इन नयी गाइडलाइंस में ऐसा कुछ भी "क्रान्तिकारी" नहीं था जिसका पलक-पाँवड़े बिछाकर स्वागत किया जाये। जिस देश में जाति, लिंग और धर्म के आधार पर भेदभाव और उत्पीड़न एक सामान्य बात हो, वहाँ ऐसी गाइडलाइंस को लाने में इतना लम्बा समय लगना अपने-आप में सवाल खड़ा करता है। कुछ लोग इन नयी गाइडलाइंस को लेकर इतने उत्साहित हो गये हैं कि इसे ही भारत में जाति व्यवस्था की ताबूत में आख़िरी कील के रूप में प्रचारित कर रहे हैं! वास्तव में ये बेहद ज़रूरी गाइडलाइंस हैं जिन्हें बहुत पहले ही लागू कर दिया जाना चाहिए था। इतने लम्बे समय बाद आयी इन नयी गाइडलाइंस में भी ऐसे कितने ही लूपहोल्स छोड़ दिये गये हैं जो न्याय और जनवाद को किनारे लगाकर उत्पीड़न करने वाले को सुरक्षित बच निकलने का रास्ता प्रदान करेगा।

नयी गाइडलाइंस के मुताबिक़ प्रत्येक विश्वविद्यालय और कॉलेज में एक समता समिति स्थापित की जायेगी जिसमें 10 सदस्य होंगे। इनमें दो छात्र, दो शहर के मानिन्द लोग, तीन प्रोफ़ेसर, एक ग़ैर-शैक्षणिक कर्मचारी, संस्थान के प्रमुख पदेन और केन्द्र के समन्वयक सदस्य होंगे। ये सभी सदस्य मनोनीत होंगे। ऐसे में इस बात की प्रचुर सम्भावना है कि जिसके पास राजनीतिक पहुँच और रसूख होगा वह इस समिति का सदस्य बनेगा और न्याय को प्रभावित भी कर पायेगा। सदस्यों के चुनाव के सम्बन्ध में आम छात्रों, कर्मचारियों और विश्वविद्यालय के अन्य सदस्यों की कोई भूमिका नहीं रहेगी। जनवादी प्रक्रिया यही हो सकती है कि सदस्यों का चुनाव हो, ना कि सदस्य मनोनीत हों। इस समता समिति के पास आरोपी को दण्डित करने का कोई अधिकार नहीं है। यदि किसी मामले में दण्ड विधि के तहत कोई मामला बनता है तो समता समिति पुलिस को सूचित भर कर सकती है। समिति के फ़ैसले के ख़िलाफ़ सम्बन्धित व्यक्ति द्वारा लोकपाल के समक्ष अपील की जा सकती है। लोकपाल किसी भी अपील की सुनवाई को सुविधाजनक बनाने के लिए एक एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) नियुक्त कर सकता है। यह न्याय मित्र न्याय के बदले शुल्क लेगा जिसका भुगतान संस्थान को करना होगा। पहली बात तो यह कि विश्वविद्यालय में पैसों का पेड़ नहीं लगा होता है! ऐसे में बहुत साफ़ है कि न्याय मित्र को न्याय करने के बदले जो शुल्क दिया जायेगा उसका भुगतान येन-केन-प्रकारेण छात्रों से वसूला जायेगा जिसकी सीधी मार ग़रीब-मेहनतकश परिवारों से आने वाले छात्रों युवाओं पर पड़ेगी। न्याय के बदले शुल्क की यह नीति मज़दूर-मेहनतकश परिवारों से आने वाले छात्रों को परिसरों से दूर धकेल देगी। दूसरी बात अपील के बाद लोकपाल मामले को 30 दिनों के भीतर निपटाने की "कोशिश" करेगा। यानी लुब्बेलुबाब यह है कि इस पूरे तामझाम में इस बात की पूरी सम्भावना है कि यह पूरी प्रक्रिया ही नौकरशाही का एक नया ढाँचा बनकर रह जाये और भेदभाव का शिकार व्यक्ति खुद न्याय पाने की आशा ही त्याग दे।

नये नियमों को निर्दोषों को फँसा देने वाला बताया जाना तो निहायत ही हास्यास्पद है। उल्टे, इन नियमों में इतनी खामियाँ हैं कि इनके लागू हो जाने पर उच्च शिक्षण संस्थानों में जातिवादी उत्पीड़न के खात्मे की उम्मीद करना आकाश कुसुम की अभिलाषा के समान है। इसके अलावा यूजीसी के द्वारा अन्य पिछड़े वर्ग (ओबीसी) को उत्पीड़ित की श्रेणी में डाला गया है जबकि आज के दौर में असल में गाँवों से लेकर शहरों तक में दलितों के ख़िलाफ़ जातिगत उत्पीड़न के बहुत से मामलों को अंजाम देने का काम तो इसी से सम्बन्धित जातियों के लोगों के द्वारा किया जाता है! इस प्रकार से यूजीसी के नये नियमों में सकारात्मक तौर पर संशोधन की काफ़ी दरकार थी लेकिन इसके बावजूद इनके द्वारा कैम्पसों में जातिवादी शोषण-उत्पीड़न होने के तथ्य को स्वीकारा जाना और इनके ख़िलाफ़ आधे-अधूरे ढंग से ही सही-समाधान तलाशना भी एक सकारात्मक क़दम था।

इस नये गाइडलाइंस के आने के बाद से ही एक तरफ जातिवादी-ब्राहमणवादी सोच की ज़मीन पर खड़े होकर सवर्ण जातियों का एक हिस्सा सड़कों पर उतर कर इसका विरोध कर रहा है। वहीं दूसरी ओर एक आबादी ऐसी भी है जो एकदम अनआलोचनात्मक तरीके से इन गाइडलाइंस का समर्थन कर रही है। इस तरह यह दोनों धड़े छात्रों की व्यापक एकजुटता के लिए ख़तरनाक हैं और भाजपा के 'फूट डालो, राज करो' की नीति के ही पिच पर खेलते नज़र आ रहे हैं। इस पूरे मसले का सबसे ज़्यादा लाभ फ़ासीवादी भाजपा को होने वाला है क्योंकि एक तरफ़ अधूरे और भेदभाव रोकने के लिए नाकाफ़ी तथा ग़ैर-जनवादी नये गाइडलाइंस लाकर मोदी सरकार पिछड़ों और एससी/एसटी वर्ग के हितैषी के रूप में अपने को पेश कर रही है; वहीं दूसरी तरफ सवर्ण जातियों का जो हिस्सा विरोध में उतर भी रहा है वह मुख्यतः और मूलतः फ़ासीवादी-जातिवादी विचारों का ही वाहक है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा नये गाइडलाइंस पर स्टे लगा देने के बाद भाजपा आसानी से इस आबादी को अपनी साम्प्रदायिक राजनीति के आधार पर साध लेगी। एक ऐसे महत्वपूर्ण दौर में जब पूरी दुनिया एक उथल-पुथल के मुहाने पर खड़ी है, विदेश नीति में मुँह की खाने के बाद मोदी सरकार की "लोकप्रियता" तेज़ी से गिर रही है, इन्दौर में गन्दा पानी पीने से दर्जनों लोगों की मौत के बाद मोदी और भाजपा सरकार लगातार सवालों के घेरे में है, जब पूरे देश में बेरोज़गारी और महँगी शिक्षा छात्रों-युवाओं के सामने सुरसा के जैसे मुँह खोले खड़ी है, तब ऐसे दौर में यह ध्रुवीकरण भाजपा के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करेगा।

इस रूप में यूजीसी की ये नयी गाइडलाइंस एक ज़रूरी क़दम हैं लेकिन यह भी सच्चाई है कि इसके अमल के लिए जनवादी प्रक्रिया को नहीं अपनाया गया है। दूसरा यह भी समझने की ज़रूरत है कि यह जाति उन्मूलन का कोई दस्तावेज़ नहीं बनने जा रहा है, जैसा कि कुछ लोग प्रचारित कर रहे हैं। किसी भी जाति समूह से ताल्लुक रखने वाली स्त्रियों और विकलांगों के साथ-साथ आर्थिक रूप से पिछड़े हुए सवर्णों और अल्पसंख्यकों को भी ये नये नियम सुरक्षा दे रहे हैं, इसलिए इस पूरे मामले को सवर्ण बनाम एससी-एसटी-ओबीसी बनाना ही फ़ासीवादी बाइनरी में उलझना है।

दरअसल हमारे समाज में ये तमाम भेदभाव पूँजी की सत्ता द्वारा पोषित हैं और जबतक पूँजी की सत्ता कायम रहेगी ऐसे भेदभाव की ज़मीन उत्पादित और पुनरुत्पादित होती रहेगी। अन्त में हम यह भी कहना चाहेंगे कि तथाकथित बहुजन एकता के नारे और पहचान की राजनीति के तहत जातिवाद के ख़िलाफ़ नहीं लड़ा जा सकता है बल्कि जातिवाद का मुक़ाबला मेहनतकश जनता की वर्गीय एकजुटता और पूँजीवाद-विरोधी क्रान्तिकारी आन्दोलन के द्वारा ही किया जा सकता है।

## सुप्रीम कोर्ट का मज़दूर-विरोधी चेहरा एक बार फिर बेनक़ाब !

# घरेलू कामगारों को न्यूनतम मज़दूरी देने की याचिका को किया ख़ारिज!!

**● नौरीन**

न्याय, बराबरी और निष्पक्षता का ढोंग करने वाली पूँजीवादी न्याय व्यवस्था का मज़दूर विरोधी चरित्र एक बार फिर सामने आ गया है। घरेलू कामगारों के लिए न्यूनतम वेतन की माँग को 29 जनवरी को सुप्रीम कोर्ट ने ख़ारिज कर दिया। मुख्य न्यायाधीश सूर्यकान्त और जॉयमाल्या बागची वाली न्यायपीठ ने घरेलू कामगारों के लिए न्यूनतम मज़दूरी को मौलिक अधिकार के रूप में अस्वीकार करते हुए जो तर्क दिये हैं उसने एक बार फिर यह साफ़ कर दिया है कि न्याय आज किसके पक्ष में है! वैसे तो पूँजीवादी लोकतन्त्र के अंतर्गत रोज़-रोज़ न्याय व्यवस्था का मज़दूर विरोधी चरित्र बेहद घिनौने रूप में बाहर आता रहता है लेकिन हमारे देश में फ़ासीवादी भाजपा के सत्तासीन होने के बाद से पिछले 11 वर्षों में विशेष तौर पर न्यायालयों और समूची न्याय प्रणाली का घोर मज़दूर-विरोधी चेहरा स्पष्ट तौर पर सामने आया है। यह अनायास नहीं है। फ़ासीवादी शक्तियों ने न केवल सरकार में अपने पैर जमाये हैं बल्कि राज्य की पूरी मशीनरी पर ही भीतर से क़ब्ज़ा कर लिया है जोकि न्यायपालिका के बढ़ते फ़ासीवादीकरण के रूप में भी दिखलायी देता है।

घरेलू कामगारों के लिए न्यूनतम मज़दूरी का क़ानून न बनाने के पीछे इस मामले में मुख्य न्यायाधीश सूर्यकान्त और जॉयमाल्या बागची की न्यायपीठ का यह तर्क है कि "अगर न्यूनतम मज़दूरी तय कर दी गयी तो लोग घरेलू कामगार रखना बन्द कर देंगे। हर घर मुक़दमेबाज़ी में फँस जायेगा।" यह तर्क साफ़ तौर पर दिखाता है कि मुख्य न्यायाधीश महोदय के लिए अमीर और उच्च मध्यवर्गीय घरों को मुक़दमेबाज़ी से बचाना, करोड़ों घरेलू कामगारों को भुखमरी के स्तर से ऊपर उठाने से अधिक महत्वपूर्ण है।

आँकड़ों के अनुसार भारत में 5 करोड़ से भी ज़्यादा घरेलू कामगार हैं। उनकी स्थिति दयनीय है। 12 घण्टे अलग-अलग कोठियों में काम करने के बाद उन्हें बमुश्किल 7000-8000 रुपये मिलते हैं। आये दिन नियोक्ता द्वारा पैसा मार लिया जाता है। देशभर में घरेलू कामगारों की स्थिति किसी से छुपी हुई नहीं है। जातिगत भेदभाव से लेकर यौन उत्पीड़न की तमाम घटनाएँ सामने आती हैं लेकिन उनपर कोई कार्रवाई नहीं होती है। घरेलू कामगारों का मज़दूर के दर्जे के लिए संघर्ष कोई नया नहीं है। तमाम राज्यों में अलग-अलग यूनियनों व संगठनों ने इस मसले को उठाया है जिसका ही नतीजा था कि महाराष्ट्र में सरकार को घरेलू कामगारों के लिए सीमित ही सही लेकिन क़ानून बनाने पड़े थे। हालाँकि तमाम अन्य श्रम क़ानूनों की तरह ही यह भी शायद ही लागू होता था। राज्य व केन्द्र सरकारों की इस मसले की तरफ़ अनदेखी भी किसी से छुपी हुई नहीं थी। इसलिए ही, न्यूनतम मज़दूरी की बुनियादी माँग को लेकर तमाम संगठनों ने सुप्रीम कोर्ट का रुख़ किया था जो कि कथित तौर पर हर तरह के अन्याय और ग़ैरबराबरी के ख़िलाफ़ इंसाफ के पक्ष में फैसला करने के लिए जानी जाती है! लेकिन कोर्ट के फ़ैसले ने उन लोगों की आँखों की पट्टी आख़िरकार उतार दी जिन्हें आज भी इस न्याय व्यवस्था से उम्मीद थी।

जस्टिस सूर्यकान्त ने जो दूसरा तर्क दिया है वह और भी ख़तरनाक है। मुख्य न्यायाधीश के अनुसार "हमारे देश में औद्योगिक विकास के ठीक से न फल-फूल पाने का कारण मज़दूरों की ट्रेड यूनियनें हैं।" लेकिन तथ्य मुख्य न्यायाधीश के तर्क से कोसों दूर हैं। मसलन भारत में कारखानों के बन्द होने का मुख्य कारण ट्रेड यूनियनें नहीं, बल्कि पूँजीपतियों के बीच की तीव्र प्रतिस्पर्धा है। पूँजीवाद का नियम ही यह है कि मुनाफ़े की इस अन्धी दौड़ में केवल कुछ ही कम्पनियाँ टिक पाती हैं।

पिछले दिसम्बर लोकसभा में कॉरपोरेट मामलों के राज्य मन्त्री हर्ष मल्होत्रा द्वारा दिये गये लिखित उत्तर के अनुसार, पिछले पाँच वर्षों में दो लाख से अधिक कम्पनियाँ बन्द हुई हैं। इन बन्दियों का कारण ट्रेड यूनियन नहीं, बल्कि विलय, रूपान्तरण, विघटन या कम्पनी अधिनियम 2013 के तहत आधिकारिक रिकॉर्ड से हटाया जाना था – जो कि पूँजीवादी प्रतिस्पर्धा के ही परिणाम हैं। इस प्रकार, सरकारी आँकड़े स्वयं मुख्य न्यायाधीश के दावों को खारिज़ करते हैं। इसके अलावा सर्वोच्च संवैधानिक पदों में से एक पर विराजमान मुख्य न्यायाधीश महोदय की यह टिप्पणी मज़दूरों के संगठित होकर यूनियन बनाने के अधिकार, उनके सामूहिक मोल-भाव की क्षमता और उनके संघर्ष करने के संवैधानिक और जनवादी अधिकारों पर भी एक क्रूर हमला है।

घरेलू कामगारों के ख़िलाफ़ यह फ़ैसला इस फ़ासीवादी दौर में न्यायापालिका के चरित्र को नंगे तौर पर उजागर करता है। यह फ़ैसला इस बात को साबित करता है कि बीते कुछ सालों में एक लम्बी प्रक्रिया में तमाम जनवादी संस्थाओं के फ़ासीवादीकरण की प्रक्रिया बेहद तेज़ी से बढ़ी है। दरअसल घरेलू कामगारों के लिए न्यूनतम मज़दूरी के न्यायसंगत अधिकार और जायज़ माँग का विरोध करना क़ानून व्यवस्था की वर्ग पक्षधरता को ही दिखलाता है। यह बात फिर से साबित हो गयी कि आज न्यायिक व्यवस्था शोषण और उत्पीड़न को ख़त्म करने के लिए नहीं बल्कि उसको बनाये रखने और बढ़ावा देने के तौर पर काम कर रही है।

इसके साथ ही मुख्य न्यायाधीश के इस फ़ैसले को सिर्फ़ घरेलू कामगारों तक सीमित करके नहीं देखने की बजाय मोदी सरकार द्वारा लागू किये गये चार लेबर कोड से जोड़कर देखना चाहिए। चार लेबर कोड के ज़रिये जो क़ानून बनाये गये हैं ये फ़ैसला उसे और पुख़्ता करता है। इस फ़ैसले के दूरगामी परिणाम होंगे। मोदी सरकार द्वारा लागू किये गये चार लेबर कोड में भी न्यूनतम वेतन की जगह 178 रुपये प्रति दिन के हिसाब से 'फ्लोर लेवल वेतन' की बात की गयी है। परमानेण्ट नौकरी की जगह 'फ़िक्स्ड टर्म इम्पलायमेण्ट' लाकर ठेका प्रथा को क़ानूनी रूप दिया गया है। यूनियन बनाने की प्रक्रिया इतनी जटिल बना दी गयी है कि यूनियन बनना लगभग असम्भव है।

घरेलू कामगारों को न्यूनतम वेतन के दायरे में लाने वाली याचिका को ख़ारिज़ करके और यूनियन बनाने के अधिकार पर बेहद आपत्तिजनक टिप्पणी से यह साफ ज़ाहिर होता है कि आज की न्याय व्यवस्था पूरी तरीक़े से मेहनतकश अवाम के विरोध में और बड़े-बड़े पूँजीपतियों और धनपशुओं के हितों के साथ खड़ी है। आज ज़रूरी है कि देशभर की घरेलू कामगार एकजुट और संगठित होकर अपने संघर्ष को और तेज़ करें। साथ ही अपने हक़-अधिकार हासिल करने के लिए लम्बी लड़ाई की तैयारी करें।

# केन्द्रीय बजट : मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता के शोषण को और भी बढ़ायेगा

## फ़ासिस्ट मोदी सरकार द्वारा श्रम के शोषण को जारी रखने और पूँजीपति वर्ग की जेबें भरने का दस्तावेज़

मोदी सरकार खोखले नारों और आँकड़ों की बाज़ीगरी की माहिर रही है। वित्त मन्त्री निर्मला सीतारमण ने "आर्थिक विकास को गति देना", "जन आकांक्षाओं की पूर्ति करना" और "समावेशी विकास सुनिश्चित करना"– इन तीन "कर्तव्यों" के नाम पर बजट पेश किया है। लेकिन इन शब्दों का वास्तविक अर्थ है, 'बुर्जुआ वर्ग के मुनाफ़े की दर को सुनिश्चित करना', 'जन असन्तोष को यथासम्भव नियन्त्रित करना' और 'सभी के लिए काम करने का दिखावा करते हुए असल में कॉरपोरेट पूँजी तथा पूँजीपति वर्ग के अन्य हिस्सों को अधिकतम लाभ पहुँचाना'।

आर्थिक विकास बनाये रखने की "आवश्यकता" दरअसल उस दीर्घकालिक मन्दी जैसी स्थिति का परिणाम है, जिससे लम्बे समय से भारतीय अर्थव्यवस्था जूझ रही है। आँकड़ों में भारी हेरफेर और 7 से 10 प्रतिशत की विकास दर पाने जैसी भविष्यवाणियों के बावजूद सच्चाई यह है कि मुनाफ़े की गिरती हुई औसत दर का गहराता संकट भारतीय अर्थव्यवस्था को जकड़े हुए है। पिछले वर्ष के बजट में राजस्व संग्रह में हुई कमी इसका प्रमाण है। यही कारण है कि पूँजीपति वर्ग का निवेश घट रहा है और सट्टेबाज़ी का बुलबुला बढ़ता जा रहा है। इससे निकलने का एकमात्र रास्ता मेहनतकश वर्ग के शोषण को बढ़ाना है और इसी कारण मोदी सरकार ने 4 श्रम संहिताएँ लागू की हैं, जो श्रमिकों के अधिकांश अधिकार छीन लेती हैं। साथ ही पहले से कमज़ोर और नाकाफी 'मनरेगा' क़ानून को और भी कमज़ोर VB-GRAM(G) योजना से प्रतिस्थापित कर दिया गया है। ये दोनों क़दम शहरी और ग्रामीण श्रमिकों के लिए काम के अधिक घण्टे और कम मज़दूरी ही सुनिश्चित करती है। वास्तव में ये नये क़ानून पूँजीपति वर्ग (जिसमें खेतिहर पूँजीपति वर्ग भी शामिल है) की लम्बे समय से चली आ रही माँग थे क्योंकि पुराने क़ानून पूँजीपतियों को लाभ पहुँचाने के बावजूद संगठित क्षेत्र के औपचारिक कर्मचारियों को कुछ अधिकार देता था और विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में 'मनरेगा' क़ानून के कारण मज़दूरी पर ऊपर की ओर दबाव बनता था, ग्रामीण मज़दूर वर्ग की सापेक्षतः मोलभाव की क्षमता बढ़ती थी और इसलिए पूँजीपति वर्ग इसके पक्ष में कतई नहीं था। इस बजट को इन्हीं फ़ासीवादी क़दमों की पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए। कुछ राज्यों में छल-प्रपंच और चुनाव आयोग की मिलीभगत से मिली चुनावी जीत से उत्साहित होकर भाजपा की मोदी सरकार ने जीएसटी दरों में कमी जैसे पूर्व में लिए दिखावटी फैसले से भी हाथ खींच लिए हैं।

बजट में लगभग 53.5 लाख करोड़ रुपये के खर्च का प्रावधान है, जिसमें से 28.7 लाख करोड़ करों से आयेंगे और कुल ग़ैर-ऋण आय 36.5 लाख करोड़ होगी। कर राजस्व मूलतः अप्रत्यक्ष करों से आता है जो कि मेहनतकश जनता की आय का हिस्सा है या फिर मुनाफ़ा, ब्याज, लगान आदि के रूप में पूँजीपति वर्ग द्वारा हड़पे गये अधिशेष मूल्य से आता है। लेकिन मोदी सरकार द्वारा प्रत्यक्ष करों को घटाने और अप्रत्यक्ष करों को बढ़ाने की प्रवृत्ति लगातार जारी है। पिछले 12 वर्षों में कॉरपोरेट टैक्स 35–40 प्रतिशत से घटाकर 22–23 प्रतिशत कर दिया गया है और आयकर छूट सीमा 7 लाख से बढ़ाकर 22 लाख कर दी गयी है। इस बजट में भी इन्हें कम ही रखा गया है, यानी अमीर वर्ग और कॉरपोरेट पूँजी समेत पूँजीपति वर्ग अधिशेष मूल्य पर बेरोकटोक लगातार कब्ज़ा करते रहेंगे। पेट्रोल-डीज़ल पर भारी कर और जीएसटी में कोई कमी नहीं की गयी है।

### लगातार घटता सामाजिक व्यय और "भव्य" खोखला तमाशा!

पिछले वर्ष के संशोधित बजट अनुमान दिखाते हैं कि सरकार कल्याणकारी योजनाओं के नाम पर जो शोर मचाती है, वह भी खर्च नहीं करती। आँकड़े खुद इसकी गवाही देते हैं—स्वच्छ भारत मिशन: 2,000 करोड़ (बजट अनुमान - 5,000 करोड़), ग्राम सड़क योजना: 11,000 करोड़ (बजट अनुमान - 19,000 करोड़), प्रधानमन्त्री आवास योजना (शहरी): 7,500 करोड़ (बजट अनुमान - 19,974 करोड़), प्रधानमन्त्री आवास योजना (ग्रामीण): 32,500 करोड़ (बजट अनुमान- 54,832 करोड़), प्रधानमन्त्री आयुष्मान भारत स्वास्थ्य अवसंरचना मिशन: 2,443 करोड़ (बजट अनुमान - 4,200 करोड़)। सामाजिक व्यय में पिछले एक दशक से कटौती जारी है और इस बजट में भी यही रुख बरकरार रखा गया है। रोज़गार सृजन और घटती मज़दूरी पर यह बजट पूरी तरह मौन है, जबकि बेरोज़गारी देश के युवाओं के सामने सबसे बड़ी समस्या बनी हुई है। पोषण, आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा पर घटता खर्च मेहनतकश जनता के जीवन के अधिकार पर सीधा हमला है। स्वास्थ्य पर खर्च जीडीपी के 1 प्रतिशत से भी कम है, लेकिन दूसरी ओर 'मेडिकल टूरिज़्म' को बढ़ावा दिया जा रहा है। 2025–26 के संशोधित अनुमानों में ग्रामीण विकास, कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, शहरी विकास, आवास और पेयजल परियोजना सहित कई सामाजिक क्षेत्रों में वास्तविक रूप से कटौती हुई है। 20 में से 17 मदों में खर्च घटा है, जिनमें एससी/एसटी कल्याण और आँगनवाड़ी योजना भी शामिल हैं। ग़रीब किसानों की लागत घटाने के लिए आवश्यक उर्वरक सब्सिडी भी कम कर दी गयी है।

### बड़ी पूँजी के लिए पलक-पाँवड़े बिछाती केन्द्र सरकार

सबसे अमीर पूँजीपतियों पर कर बढ़ाने की बात तो दूर, सरकार ने पूँजीपति वर्ग को लाभ पहुँचाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। लगभग 12.2 लाख करोड़ रुपये पूँजीगत व्यय के नाम पर बाज़ार को बढ़ावा देने में खर्च होंगे, यानी ऐसे इन्फ्रास्ट्रक्चर का निर्माण किया जायेगा जो ठेकों के माध्यम से पूँजीपतियों को लाभ पहुँचायेगा। बायोफार्मा कम्पनियों को 10,000 करोड़, सेमीकण्डक्टर क्षेत्र को 40,000 करोड़ की सब्सिडी दी जा रही है, और 'रेयर अर्थ मिनरल कॉरिडोर' बनाकर निजी खनन क्षेत्र को लाभ पहुँचाया जा रहा है। कमज़ोर हो चुके एमएसएमई (सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग) सेक्टर को मात्र 10,000 करोड़ का प्रावधान कर सांत्वना देने की कोशिश की गयी है। क्लाउड सेवाएँ देने वाली अडानी-अम्बानी जैसी बड़ी कम्पनियों को कर में छूट दी गयी है। कृषि में ड्रोन और एआई जैसी योजनाएँ भी बड़े पूँजीपतियों को सब्सिडी देने का माध्यम हैं। विदेशी आय और सम्पत्ति की स्वैच्छिक घोषणा जैसी योजनाओं के ज़रिये काले धन को सफेद बनाने का मौका फिर से दिया गया है। मिनिमम अल्टर्नेट टैक्स (MAT) 15 प्रतिशत से घटाकर 14 प्रतिशत कर दिया गया है। व्यक्तिगत आयकर संग्रह (14.66 लाख करोड़) का कॉरपोरेट कर संग्रह (12.31 लाख करोड़) से अधिक हो जाना दिखाता है कि अब न केवल मेहनतकश तबक़ा बल्कि मध्यवर्ग भी कॉरपोरेट्स को दी जा रही रियायतों का बोझ उठा रहा है। अमीरों के लिए कॉरपोरेट्स द्वारा बनाये जाने वाले हाई-स्पीड रेल कॉरिडोर को फण्ड किया जा रहा है, जबकि लोकल, पैसेंजर और एक्सप्रेस ट्रेनों का ढाँचा लगातार जर्जर होता जा रहा है।

कुलमिलाकर कहें तो यह मज़दूर-विरोधी और जन-विरोधी बजट दरअसल मोदी सरकार की फ़ासीवादी नीतियों की ही निरन्तरता है जो पूरे पूँजीपति वर्ग और विशेष रूप से बड़ी पूँजी के हित में है। इस हमले का प्रतिरोध करने के लिए मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में व्यापक जनआन्दोलन खड़ा करना हमारी तात्कालिक आवश्यकता है।

# ईरान में तख़्तापलट की कोशिश में नाकाम रहने के बाद अमेरिका अब हमला करके पूरे क्षेत्र को युद्ध की आग में झोंकने पर आमादा

## अमेरिकी साम्राज्यवाद और ख़ामेनेई की निरंकुश हुकूमत दोनों ही ईरान की मेहनतकश अवाम के दुश्मन हैं!

● आनन्द

ईरान में लगातार बिगड़ते आर्थिक हालात और ईरानी मुद्रा रियाल के तेज़ी से होते अवमूल्यन से तंग आकर पिछले साल के अन्त में दुकानदारों और व्यापारियों ने राजधानी तेहरान की सड़कों पर प्रदर्शन करना शुरू किया था। जल्द ही इस प्रदर्शन में अन्य तबक़ों के लोग भी शामिल हो गये और देखते ही देखते इस प्रदर्शन ने अयातुल्लाह अली ख़ामेनेई के नेतृत्व वाली ईरान की निरंकुश शिया कट्टरपन्थी हुकूमत के ख़िलाफ़ एक व्यापक आम जनबग़ावत की शक़्ल अख़्तियार कर ली। इस साल के शुरुआती दिनों में तेहरान सहित ईरान के तमाम शहरों व क़स्बों में भारी संख्या में लोग ख़ामेनेई की ज़ालिम व भ्रष्ट सत्ता के ख़िलाफ़ सड़कों पर उतरे। यह हाल के वर्षों में ईरान में हुआ सबसे बड़ा जनविद्रोह था। इस बीच अमेरिकी साम्राज्यवाद के सरगना डोनाल्ड ट्रम्प ने वेनेज़ुएला में हमला करके वहाँ के राष्ट्रपति निकोलस मादुरो का अपहरण करने के फ़ौरन बाद अपनी गिद्ध दृष्टि ईरान पर डालते हुए वहाँ के आन्तरिक संकट का फ़ायदा उठाकर ईरान में सैन्य हस्तक्षेप की धमकी भी दी। ट्रम्प ने प्रदर्शनकारियों को उकसाते हुए कहा कि वे प्रदर्शन करते रहें और अमेरिका उनकी मदद के लिए आगे आयेगा। इसी बीच ख़बरों के मुताबिक़ इज़रायल की ख़ुफ़िया एजेंसी मोस्साद ने ईरान में जारी विरोध-प्रदर्शनों में घुसपैठ करके उसे हिंसक रूप देने का काम किया। इन बाहरी हस्तक्षेपों और उकसावेबाज़ी ने ईरान की हुकूमत को इस जनबग़ावत को बर्बरता से कुचलने का बहाना दे दिया। उसके बाद हुए बर्बर राजकीय दमन में सैकड़ों प्रदर्शनकारियों को मौत के घाट उतार दिया गया और इस प्रकार इस बार भी ईरान की हुकूमत ने जनबग़ावत को ख़ून के दरिया में डुबो दिया। उसके बाद ख़ामेइनी हुकूमत ने तेहरान सहित ईरान के विभिन्न हिस्सों में अपने समर्थकों की रैलियाँ निकालकर यह जताया कि उसका समर्थन अभी भी बरक़रार है। यह लेख लिखे जाने तक जहाँ एक तरफ़ फ़ारस की खाड़ी में अमेरिका के जंगी बेड़े जंग की तैयारियों में जुटे हैं वहीं दूसरी तरफ़ ओमान की मध्यस्थता में अमेरिका व ईरान के बीच समझौते के लिए बातचीत चल रही है।

ईरान में जारी उथल-पुथल को लेकर ईरान व दुनिया के अन्य हिस्सों में मोटे तौर पर दो तरह के दृष्टिकोण प्रचलित हैं। कुछ लोग इसमें ईरान में हुई हिंसा व उथल-पुथल के लिए सिर्फ़ वहाँ की निरंकुश धार्मिक कट्टरपन्थी हुकूमत को ज़िम्मेदार ठहराते हैं और इसमें अमेरिका व इज़राइल की भूमिका को या तो पूरी तरह से नज़रअन्दाज़ करते हैं या फिर इन बाहरी हस्तक्षेपों को सकरात्मक दृष्टि से देखते हैं। वहीं दूसरी ओर कुछ लोग ईरान में हुए प्रदर्शनों को पूरी तरह से साम्राज्यवादी ताक़तों द्वारा प्रायोजित बताते हैं और आन्तरिक कारणों को नज़रअन्दाज़ करते हैं। वास्तव में ये दोनों ही दृष्टिकोण सच्चाई से दूर हैं। यह सच है कि लगातार बदहाल होते आर्थिक हालात और तमाम सामाजिक पाबन्दियों की वजह से ईरान की अवाम में वहाँ की हुकूमत के ख़िलाफ़ ज़बर्दस्त जनाक्रोश है और यह आर्थिक-सामाजिक संकट ही वहाँ के राजनीतिक संकट की जड़ में है। परन्तु यह भी सच है कि अमेरिकी व इज़रायली हस्तक्षेप ने ईरान की परिस्थिति को और जटिल बनाया है। ऐसे में वहाँ अयातुल्लाह की निरंकुश हुकूमत और अमेरिकी साम्राज्यवाद में से किसी एक का पक्ष लेने के बजाय हमें मज़दूर वर्ग के नज़रिये से इस जटिल परिस्थिति को समझना होगा।

### ईरान के समाज का आन्तरिक अन्तरविरोध

ग़ौरतलब है कि पिछले कुछ समय से ईरान की अर्थव्यवस्था भीषण आर्थिक संकट से गुज़र रही है। पिछले साल जून में ईरान में इज़रायली और अमेरिकी हमले के बाद से वहाँ के आर्थिक हालात बद से बदतर हो गये हैं। ईरान की अर्थव्यवस्था मुख्य तौर पर तेल व गैस के निर्यात पर निर्भर है और पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों की वजह से ईरान में तेल निर्यात में पिछले कुछ वर्षों से लगातार गिरावट देखने में आयी है। आँकड़ों के मुताबिक़ साल 2025 में ईरान का तेल निर्यात साल 2024 के मुक़ाबले 7 प्रतिशत नीचे गिर गया। महँगाई 60 फ़ीसदी से ऊपर जा चुकी है और ईरान की मुद्रा रियाल का पिछले छह महीने में 60 प्रतिशत अवमूल्यन हो चुका है। ऐसे में लोगों को अपनी बुनियादी ज़रूरतों के सामान ख़रीदने के लिए भी बाज़ार में नोटों की मोटी-मोटी गड्डियाँ ले जानी पड़ती हैं। ज़ाहिर है कि इस आर्थिक तंगी का सबसे बुरा असर वहाँ की मेहनतकश अवाम पर पड़ा है जो भुखमरी की हालत में जीने को मजबूर है। ग़ौरतलब है कि ईरान में इस्लामी निज़ाम के आवरण में एक महाभ्रष्ट पूँजीवादी तन्त्र अस्तित्वमान है जिसकी बागडोर अयातुल्लाह ख़ामेनई के नेतृत्व में कट्टरपन्थी उलेमा और तथाकथित 'रिवोल्यूशनरी गार्ड' के हाथों में है जिनके तार वहाँ के सैन्य औद्योगिक आर्थिक संकुल (मिलिटरी इण्डस्ट्रियल इकोनॉमिक कॉम्पलेक्स) से जुड़े हैं और जो वहाँ की अर्थव्यवस्था के प्रमुख सेक्टरों पर क़ाबिज़ हैं। यह छोटा-सा तबक़ा वहाँ बुनियाद नामक ट्रस्टों के तहत तमाम अनुबन्धों और परमिटों को हासिल करके अकूत मुनाफ़ा कूट रहा है। आर्थिक संकट की परिस्थिति में भी यह शासक तबक़ा विलासिता भरी ज़िन्दगी बिता रहा है जबकि ईरानी अवाम की ज़िन्दगी लगातार बदहाल होती जा रही है।

आर्थिक बदहाली के साथ ही साथ ईरान में पिछले 47 साल से मौजूद धार्मिक कट्टरपन्थी हुकूमत द्वारा वहाँ के लोगों पर थोपी गयी तमाम पाबन्दियों की वजह से भी लोगों के बीच सत्ता के ख़िलाफ़ ग़ुस्सा लगातार बढ़ता गया है। ईरान की निरंकुश हुकूमत के ख़िलाफ़ लोगों का ग़ुस्सा समय-समय पर फूटता रहा है। याद दिला दें कि साल 2022 में महसा अमीनी नामक एक ईरानी कुर्द महिला की हिरासत में मौत के बाद ईरान की सड़कों पर विशाल जनसैलाब देखने में आया था। महसा अमीनी को ईरान की तथाकथित नैतिक पुलिस ने सिर्फ़ इसलिए गिरफ़्तार कर लिया था क्योंकि उसने "उचित" तरीक़े से हिजाब नहीं पहना था। इस बार भी प्रदर्शनों की शुरुआत तेहरान के प्रसिद्ध ग्रैण्डबाज़ार में दुकानदारों व व्यापारियों के प्रदर्शन से हुई, लेकिन कुछ ही दिनों के भीतर ईरान के विभिन्न हिस्सों में आम लोगों का हुजूम सड़कों पर आ गया और यह प्रदर्शन एक जनबग़ावत में तब्दील होने लगा। पिछले दो दशकों के दौरान ईरान में कुछ सालों के अन्तराल पर ख़ामेनई की हुकूमत के ख़िलाफ़ जनाक्रोश वहाँ की सड़कों पर दिखता आया है। ईरान पर लगे प्रतिबन्धों की वजह से वहाँ आर्थिक संकट गहराता गया है जिसकी वजह से राजनीतिक संकट समय के साथ तीखा होता गया है।

### ईरान में साम्राज्यवादी हस्तक्षेप

बेशक ईरान में जारी उथल-पुथल की जड़ में वहाँ के समाज का आन्तरिक संकट ही है। परन्तु इस संकट के गहराने में और उसका फ़ायदा उठाकर वहाँ अराजकता फैलाने में साम्राज्यवादी ताक़तों की भूमिका को कतई नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता। ग़ौरतलब है कि डोनाल्ड ट्रम्प ने अमेरिकी राष्ट्रपति के अपने पहले कार्यकाल में ही अमेरिका और ईरान के बीच 2015 में हुए नाभिकीय समझौते को निरस्त कर दिया था और ईरान के ऊपर पाबन्दियाँ थोप दी थीं। उसके बाद यूरोपीय साम्राज्यवादी देशों ने भी ईरान पर प्रतिबन्ध लगा दिये थे। चूँकि ईरान की अर्थव्यवस्था का आधार स्तम्भ तेल व गैस का निर्यात है इसलिए अमेरिका व यूरोपीय देशों द्वारा थोपे गये प्रतिबन्धों की वजह से वहाँ की अर्थव्यवस्था में पहले से जारी संकट और गहराता गया है। पिछले साल इज़रायल और ईरान के बीच 12 दिनों तक चली जंग और फिर ईरान पर अमेरिकी हमले की वजह से वहाँ राजधानी तेहरान सहित कई शहरों में बुनियादी ढाँचा और तमाम इमारतें ध्वस्त हो गयीं जिसकी वजह से आर्थिक संकट और तीखा हो गया। उसके पहले पश्चिमी एशिया में ईरान के सहयोगियों की हार या उनके कमज़ोर होने की वजह से रणनीतिक दृष्टि से भी ईरान कमज़ोर हुआ है। सीरिया में बशर अल असद की सत्ता के पतन और लेबनॉन में हिज़बुल्लाह के कमज़ोर होने की वजह से पश्चिमी एशिया में ईरान के वर्चस्व में कमी आयी है। हालाँकि ईरान की निकटता रूस व चीन की साम्राज्यवादी धुरी से है और ये दोनों साम्राज्यवादी देश उसे हथियारों, सैन्य उपकरणों और सैटेलाइट तस्वीरों के ज़रिये मदद करते हैं, हालाँकि इसकी सम्भावना फिलहाल कम है कि वे खुलकर ईरान के पक्ष में युद्ध में उतरेंगे।

इस साल की शुरुआत में जब ईरान की सड़कों पर जनसैलाब उमड़ने लगा तो अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रम्प ने ईरान के इस राजनीतिक-आर्थिक संकट में अपने साम्राज्यवादी हितों को पूरा करने का मौक़ा देखा। ट्रम्प ने प्रदर्शनकारियों को उकसाते हुए कहा कि वे प्रदर्शन जारी रखें और अमेरिका उनकी मदद मे आएगा। जैसाकि हमने ऊपर उल्लेख किया था इज़रायली खुफ़िया एजेंसी मोस्साद ने ईरान में जारी प्रदर्शनों में घुसपैठ करके उसे हिंसक रूप देने में अहम भूमिका निभायी ताकि ईरानी राज्यसत्ता को इन प्रदर्शनों का बर्बर दमन करने के लिए उकसाया जाये और इस प्रक्रिया में जानमाल के नुक़सान से पूरे ईरान में अराजकता का माहौल क़ायम हो जाये और ख़ामेइनी की हुकूमत का तख़्तापलट किया जा सके। ग़ौरतलब है कि पश्चिमी मीडिया में साम्राज्यवाद-परस्त ईरान के पूर्व शाह के बेटे रज़ा पहलवी को ईरान के अगले शासक के रूप में प्रचारित किया जा रहा है और उसके समर्थन में लहर चलायी जा रही है। हालाँकि फ़िलहाल अमेरिकी साम्राज्यवादी अपने मंसूबे में कामयाब होते नज़र नहीं आ रहे हैं। वास्तव में अमेरिकी व इज़रायली हस्तक्षेपों से ख़ामेनेई की सत्ता को जनान्दोलनों को बर्बरता से कुचलने का बहाना दे दिया है। ईरान की हुकूमत ने समूचे विद्रोह को ही अमेरिका व इज़रायल द्वारा प्रायोजित बताकर भीषण क़त्लेआम को अंजाम दिया और राष्ट्रवाद की लहर चलाकर अपने समर्थन में रैलियाँ निकलवाईं। ईरान में अमेरिकी साम्राज्यवाद के हस्तक्षेपों का लम्बा इतिहास होने की वजह से वहाँ अमेरिका-विरोधी भावनाएँ बहुत प्रबल हैं जिसका लाभ ईरान की बर्बर सत्ता अपने वजूद को बचाने के लिए उठाती आयी है। आज भी जहाँ एक ओर आर्थिक संकट व सामाजिक पाबन्दियों की वजह से ईरान के लोगों में ख़ामेइनी की हुकूमत के ख़िलाफ़ आक्रोश बढ़ा है; वहीं दूसरी ओर अमेरिका और इज़रायल द्वारा युद्ध की तैयारियाँ और धमकी देने से ईरान के आम लोगों में साम्राज्यवाद-विरोधी राष्ट्रवादी भावनाएँ भी तेज़ी से बढ़ रही हैं जिसकी वजह से ख़ामेइनी के ख़िलाफ़ विद्रोह एक सीमा से आगे नहीं जा पा रहा है और नतीजतन ख़ामेइनी की हुकूमत का आधार अभी पूरी तरह से ख़त्म नहीं हो पाया है।

### मज़दूर वर्ग का नज़रिया

मज़दूर वर्ग के नज़रिये से देखें तो ईरान में ख़ामेनेई की निरंकुश सत्ता और अमेरिकी साम्राज्यवाद व उसके द्वारा पाला-पोसा जा रहा रज़ा पहलवी, दोनों ही वहाँ के अवाम के दुश्मन हैं। मज़दूर वर्ग इन दोनों में से किसी एक को चुनने के लिए बाध्य नहीं है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि ख़ामेनई की सत्ता एक पूँजीवादी सत्ता है जो ईरान के मज़दूरों और मेहनतकशों के शोषण पर टिकी हुई है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि ईरानी अवाम इस बर्बर सत्ता को उखाड़ फेंकने में अमेरिकी साम्राज्यवाद या ज़ायनवादी इज़रायल के साथ किसी भी क़िस्म का सम्बन्ध बनाकर रज़ा पहलवी की ताज़पोशी की प्रक्रिया में किसी भी रूप से शामिल हो। ईरान में मौजूदा शिया कट्टरपन्थी हुकूमत से पहले रज़ा पहलवी के पिता मोहम्मद रज़ा शाह पहलवी के नेतृत्व में राजशाही थी जिसके तख़्त और ताज को ईरान की जनता ने ही उखाड़ फेंका था। ऐसे में वहाँ फिर से राजतन्त्र की स्थापना का कोई तुक नहीं बनता। ईरान के आन्तरिक संकट के समाधान की ज़िम्मेदारी वहाँ की अवाम की है। इस प्रक्रिया में अगर अमेरिका किसी भी क़िस्म की फ़ौजी साम्राज्यवादी दख़ल करेगा तो ईरान की अवाम फौरी तौर पर अपने आन्तरिक मतभेद किनारे रखकर विदेशी हमले के ख़िलाफ़ एकजुट हो जायेगी और साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ अन्तरविरोध प्रधान अन्तरविरोध बन जायेगा।

ख़ामेनेई की धार्मिक कट्टरपन्थी पूँजीवादी हुकूमत का वास्तविक विकल्प अमेरिकी साम्राज्यवाद की सरपरस्ती में राजशाही की वापसी नहीं बल्कि मज़दूर इंक़लाब और समाजवाद ही हो सकता है। यह सच है कि फ़िलहाल ईरान में ऐसी कोई क्रान्तिकारी ताक़त नहीं दिख रही है जो वहाँ के राजनीतिक संकट को क्रान्तिकारी संकट में तब्दील करके ख़ामेनेई की हुकूमत चकनाचूर करके राज्यसत्ता पर क़ब्ज़ा कर सके। परन्तु ईरान में जारी उथल-पुथल निश्चित ही वहाँ क्रान्तिकारी ताक़तों के फलने-फूलने की ज़मीन पैदा करेगी। समाजवाद की स्थापना के रूप में एक क्रान्तिकारी समाधान ही ईरान में जारी गतिरोध को ख़त्म कर सकता है।

## फ़ासीवाद-विरोधी महान जर्मन कवि व नाटककार बेर्टोल्ट ब्रेष्ट के जन्मदिवस (10 फ़रवरी) के मौक़े पर

# प्रचार की ज़रूरत

**• बेर्टोल्ट ब्रेष्ट**

1

यह मुमकिन है कि हमारे देश में सबकुछ वैसा नहीं है,
जैसा कि होना चाहिए था।
लेकिन इसमें कोई शक़ नहीं कि प्रचार ठीक-ठाक चल रहा है।
यहाँ तक कि भूख को भी मानना पड़ेगा
कि खाद्यमन्त्री बड़ा अच्छा भाषण देता है

2

सरकार ने जब सिर्फ़ एक दिन में
हज़ार लोगों को मौत के घाट उतारा,
न कोई जाँच, न अदालत का फ़ैसला
प्रचारमन्त्री ने महान नेता के धीरज की तारीफ़ की
कि वह मारने से पहले इतने लम्बे अरसे तक इन्तज़ार करते रहे।
और ये बदमाश अपनी दौलत और इज़्ज़त का मज़ा लेते रहे।
क्या ग़ज़ब का भाषण था.
कि सिर्फ मरने वालों के रिश्तेदार ही नहीं,
बल्कि कसाई खुद भी रो पड़े थे।

3

और फिर जब एक दिन साम्राज्य के सबसे बड़े हवाई जहाज़ में
आग लग गयी, क्योंकि उसमें जल उठने वाली गैस भरी गयी थी
ताकि न जलने वाली गैस जंग के लिए बचाई जा सके
मरने वालों के ताबूत के सामने हवाई यातायात मन्त्री ने वचन दिया
कि वह हिम्मत नहीं हारेंगे, और इसके बाद
चारों ओर तालियाँ बजने लगीं। यहाँ तक कि ताबूतों से भी
तालियों की गड़गड़ाहट सुनाई देने लगी।

4

और कितना लाजवाब है.
कूड़े और महान नेता की किताब के लिए प्रचार!
हर शख्स को पढ़नी पड़ी महान नेता की किताब
जहाँ भी पड़ी रही हो वह।
चीथड़ा इकट्ठा करने के लिए शक्तिशाली गोयरिंग ने
खुद को सबसे बड़ा चीथड़ा-संग्राहक घोषित किया
और चीथड़ा रखने के लिए राजधानी के बीचोबीच
एक महल बनाया गया
जो शहर जितना ही विशाल था।

5

एक अच्छा प्रचारक
कूड़े के ढेर को सुरम्य पर्वत बना देता है।
अगर घी न मिले, वह साबित कर देता है
कि पतली कमर हर इनसान के लिए अच्छी है।
जब वह चौड़ी सड़क बनाने की डींग हाँकता है
हजारों लोग ख़ुश हो जाते हैं, मानो उन्हें मोटरगाड़ी मिल गयी हो।
भूखों मरनेवालों और जंग में जान देनेवालों की क़ब्रों पर वह
पौधे रोपता है। लेकिन उसकी नौबत आने से काफ़ी पहले ही वह
अमन की बात करता है, जबकि तोपगाड़ियाँ चल पड़ी होती हैं।

6

क़ायदे के प्रचार से ही यह मुमकिन था
कि करोड़ों लोगों को यकीन हो गया
कि सेना का निर्माण शान्ति के किले का निर्माण है।
और हर नया टैंक एक शान्ति कपोत है।
और सेना का हर नया दस्ता एक सबूत है
अमन से प्यार का।

7

बहरहाल अच्छे भाषण से भले ही बहुत कुछ मिले,
सबकुछ तो नहीं मिलता। कुछ लोग
यह भी कहने लगे हैं : अफ़सोस,
गोश्त की बात सुनने से पेट नहीं भरता
और पैण्ट-कोट का नाम सुनने से बदन में गर्मी नहीं आती।
जब योजनामंत्री नये शानदार लिबास के क़सीदे काढ़ता है
पानी नहीं बरसना चाहिए, वरना
श्रोताओं के फटे कपड़े भीगकर तार-तार हो जायेंगे।

8

प्रचार के मकसद के बारे में
और एक बात लाज़मी है : प्रचार जितना बढ़ता जाता है,
बाक़ी सारी चीज़ें उतनी ही घटने लगती हैं।

मूल जर्मन भाषा से अनुवाद : **उज्ज्वल भट्टाचार्य**

# फ़ासीवादी मोदी के राज में नफ़रत आधारित हिंसा एवं अपराध चरम पर

**(पेज 4 से आगे)**

और इनके छुटभैय्ये फ़ासीवादी गुण्डा गिरोह "गाय की रक्षा" के नाम पर मुसलमान आबादी को लगातार निशाना बना रहा है। महाराष्ट्र के सम्भाजीनगर में एक मवेशी के व्यापारी और पंजाब के लुधियाना में एक बिरयानी के दुकानकार को "गौरक्षा" गुण्डा गिरोह के कोप का भाजन बनना पड़ा। मध्य प्रदेश के दमोह में तथाकथित "गौरक्षकों" के दबाव में पुलिस ने नौ मुस्लिमों को सार्वजनिक रूप से परेड करवाया और आरोपियों को पशु क्रूरता अधिनियम के तहत जेल भेजा गया। बाद में अधिकारियों ने मारे गये जानवर में गाय की जगह भैंस के बछड़े का माँस पाया। इस घटना की आड़ लेकर दमोह में साम्प्रदायिक उन्माद भड़काने की चालें चली गयी। फ़ासीवादी उपद्रवियों ने माँस व्यापारियों के ऊपर पहले तो लाठियों से हमले किये और बाद पुलिस प्रशासन ने सार्वजनिक तौर पर मार्च करवाकर पीड़ित पक्ष को ही अपमानित करने का काम किया। इस घटना में सीधे तौर पर यह दिखलाई पड़ता है कि फ़ासीवादी गुण्डा गिरोह एवं स्थानीय पुलिस प्रशासन ने एक साथ मिलकर बेगुनाह लोगों के ऊपर ज़ुल्म ढ़ाने का काम किया।

धार्मिक अल्पसंख्यकों के विरुद्ध नफ़रत एवं हिंसा से सम्बन्धित घटनाओं की लम्बी फेहरिस्त है सबके बारे में यहाँ चर्चा करना सम्भव नहीं है। इनमें से कई घटनाएँ सीधे तौर राज्य की तथाकथित निष्पक्षता की कलई खोलकर रख देती हैं। फ़ासीवादी नफ़रती गुण्डा गैंगों पर कठोर कार्रवाई ना होना सत्ता के साथ उसके गठबन्धन का स्पष्ट संकेत है। हमारे देश में नफ़रती हिंसा की घटनाओं में लगातार जो बढ़ोतरी हो रही है, इसका कारण साफ़ तौर फ़ासीवादी सत्ता और उसकी राजनीति है। फ़ासीवाद की एक आम चारित्रिक अभिलाक्षणिता होती है कि एक विचारणीय आकार की धार्मिक, नस्ली, जातिगत या किसी अन्य अस्मिता पर आधारित अल्पसंख्यक आबादी का अन्यकरण करना और उसे बहुसंख्यक आबादी एवं यहाँ तक कि समस्त देश का शत्रु घोषित कर देना। पूँजीवादी लूट से उत्पन्न समस्याओं, मसलन असमानता, ग़रीबी, बेरोज़गारी एवं विभिन्न तरह की सामाजिक-आर्थिक असुरक्षा आदि के लिए इसी काल्पनिक शत्रु को ज़िम्मेदार ठहरा दिया जाता है। आज हमारे देश में मुसलमानों और अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों को इसी प्रकार एक नकली शत्रु के तौर पर पेश किया जा रहा है और देश की बहुसंख्यक आम जनता को गुमराह कर उसी के हितों के ख़िलाफ़ एक दंगाई भीड़ में तब्दील करने का प्रयास किया जा रहा है। आम जनता अपने बुनियादी मसलों पर एकजुट होकर सरकार के ऊपर सवाल ना उठा पाये इसलिए उन्हें लगातार नफ़रत के भँवरजाल में उलझाया जा रहा है।

2014 में मोदी की सरकार के सत्ता में पहुँचने के बाद से ही आरएसएस और उनके तमाम अनुषंगी संगठनों को नफ़रत फैलाने और नफ़रती अपराधों को अंजाम देने की खुली छूट मिली हुई है। नफ़रती अपराधों को अंजाम देने में फ़ासीवादी आरएसएस-भाजपा परिवार से सम्बन्ध रखने वाले लोग सबसे अगली कतार में खड़े हैं, यह बात सभी जानते हैं। नफ़रती अपराध को अंजाम देने के बाद सत्ता के संरक्षण द्वारा दोषियों के बच निकलने की हर सम्भव मदद की जाती है। सत्ता की मेहरबानी नफ़रत का ज़हर उगलने वाले अपराधियों के मनोबल को बढ़ाने का काम कर रही है। अपराधियों को सत्ता की शह मिलने का नतीजा आज स्त्रियों, उत्तरपूर्व के राज्यों के निवासियों, मुसलमानों, ईसाइयों, दलितों, आदिवासियों आदि के विरुद्ध नफ़रती अपराध चरम पर है और यहाँ तक कि व्यापक पैमाने पर ग़रीब मेहनतकश हिन्दू आबादी भी इसकी चपेट में आ रही है। यह तो होना ही था। फ़ासीवाद जिन बर्बर शक्तियों को निर्बन्ध करता है, उसमें यह होता ही है और यह फ़ासीवादी राजनीति की ज़रूरत भी होती है।

हमें यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि देश में बढ़ती बेरोज़गारी, ग़रीबी, महँगाई आदि का ज़िम्मेदार धार्मिक अल्पसंख्यक नहीं बल्कि यह मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था है। फ़ासीवादी सत्ता इस जालिम पूँजीवादी व्यवस्था को टिकाये रखने के लिए जनता को साम्प्रदायिक आधार पर बाँटने यानी 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपना रही है और धार्मिक अल्पसंख्यकों के विरुद्ध होने वाले अपराधों को बढ़ावा दे रही है। आज सभी मज़दूर-मेहनतकश एवं इन्साफ़पसन्द लोगों का यह फ़र्ज़ बनता है कि वह अपनी जुझारू जनएकजुटता के दम पर हर सम्भव तरीक़े से फ़ासीवादियों की नफ़रती राजनीति का प्रतिकार करें।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

# ‘एप्सटीन फ़ाइल्स’: पूँजीवाद की सड़ांध और गलाज़त को बेनक़ाब करता और दुनियाभर के शासक वर्गों की “नैतिकता” और “आदर्शों” की कलई खोलता सबसे बड़ा काण्ड

## पूँजीवाद के खात्मे के साथ ही ऐसे घृणित काण्ड ख़त्म हो सकते हैं!

● नवमीत

पूँजीवाद इन्सान का सिर्फ शोषण नहीं करता, यह इन्सानी शरीर को वस्तु बना देता है, उसे माल में बदल देता है। जब भी यौन शोषण, बलात्कार, उत्पीड़न से सम्बन्धित कोई स्कैण्डल सामने आता है, लिबरल तबके में शॉक, गुस्से और निन्दा की लहर दौड़ जाती है या फिर ज़्यादा भावुक लोग मध्ययुगीन क़ानून लागू करने की बात करने लगते हैं। कुछ को लगता है कि यह महज़ राजनीतिक काण्ड है। हालाँकि इस तरह के किसी भी काण्ड के सार्वजनिक होने पर गुस्सा आना किसी भी संवेदनशील व्यक्ति के लिए लाज़िमी है और इसका राजनीतिक अर्थ भी अक्सर होता ही है।

लेकिन इस सबके बावजूद इस तरह के तमाम काण्ड अपने अन्दर एक गहरा और घृणित सच लिये होते हैं। चाहे यह श्रम शक्ति हो, प्रजनन क्षमता हो, यौन उपलब्धता हो या फिर जीवन ही क्यों न हो, पूँजीवाद में मानव शरीर एक विनिमय की वस्तु होता है। वर्ग समाजों के साथ उत्पन्न हुई पितृसत्ता ने स्त्री का शरीर तो बहुत पहले से भोग की वस्तु बना दिया था, लेकिन पितृसत्ता के पूँजीवाद से गठजोड़ ने उसे भोग के साथ उपभोग की वस्तु भी बना दिया है।

हाल ही में उजागर हुई ‘एप्सटीन फ़ाइल्स’ ने पूरी दुनिया का ध्यान आकर्षित किया है। मुख्यधारा के नैरेटिव में इस पूरे काण्ड को नैतिक और राजनीतिक पतन के तौर पर देखा जा रहा है। बड़े बड़े लोगों, धनी और राजनेताओं, के नाम इसमें आ रहे हैं।

लेकिन सवाल यह नहीं है कि किन व्यक्तियों के नाम इसमें आ रहे हैं, सवाल ये है कि यह किस व्यवस्था की देन है? क्योंकि जिस व्यवस्था में यह सब हो रहा है या बहुत पहले से होता रहा है, उसमें उन नामों से ज़्यादा वह वर्ग और वर्गीय शोषण महत्वपूर्ण है जिसकी यह अनिवार्य परिणति है। वह कौन-सी व्यवस्था है जो इस तरह के काण्ड और व्यक्ति सृजित करती है, उनका बचाव करती है और उनके अपराधों को दशकों तक छिपा कर रखती है?

लिबरल नैरेटिव यह है कि इस तरह के काण्ड इलीट वर्ग का नैतिक पतन है। लेकिन यह पतन जिन परिस्थितियों में पैदा होता है, उनके बारे में कोई बात नहीं करता।

शोषण का आधार नैतिक पतन नहीं बल्कि वर्ग सम्बन्ध होते हैं। पूँजीवादी समाज में आर्थिक शक्ति सामाजिक वर्चस्व में बदलती है, उसे राजनीतिक संरक्षण मिलता है और क़ानून की इम्युनिटी मिलती है। इस तरह के यौन शोषण महज निजी पतन या क़ानूनी जुर्म नहीं हैं, बल्कि यह प्रभुत्व सम्पन्न वर्ग द्वारा अपनी शक्ति की आज़माइश का घिनौना खेल है।

जेफ्री एप्सटीन महज़ एक दलाल या मानव तस्कर नहीं था। वह प्रभु वर्ग का वह घिनौना चेहरा है जो अब दुनिया के सामने उजागर हो रहा है। वह उस केन्द्र बिन्दु की तरह था जहाँ वित्तीय पूँजी, राजनीतिक इलीट, अकादमिक प्रतिष्ठा और राज्यसत्ता का संगम हो रहा था।

मानव तस्करी पूँजीवाद में किसी “क्रोनी अर्थव्यवस्था” का अपवाद नहीं है। बल्कि यह तो वैश्विक पूँजी संचय की एक समानान्तर शाखा है। यह “उद्योग” ग़रीबी, बेरोज़गारी, विस्थापन, युद्ध और प्रवासन जैसे हालातों में फलता-फूलता है। मेहनतकश वर्ग की स्त्रियाँ और बच्चे यहाँ श्रम शक्ति से भी आगे सीधे उपभोग हेतु विनिमय की वस्तु में बदल दिये जाते हैं। ग़रीब देशों की स्त्रियाँ और बच्चे, पूँजीपति उपभोक्ताओं के लिए “सस्ते यौन श्रमिक” हैं और इन्हीं हालात में “यौन पर्यटन” जैसे “बिज़नेस” पैदा होते हैं।

‘एप्सटीन फ़ाइल्स’ जैसे दूसरे छोटे-बड़े मामलों में पीड़ित अक्सर कामगार या आश्रित स्थिति में होते हैं। अपराधी “प्रतिष्ठा”, “नेटवर्क” और “ब्राण्ड वैल्यू” के कवच में सुरक्षित रहते हैं। ये सभी अलग-अलग मामले दिख सकते हैं लेकिन असल में ये मानव शरीर के वस्तुकरण की अलग-अलग अभिव्यक्तियाँ हैं।

यही वह बिन्दु है जहाँ आकर उन तथ्यों का “रहस्योद्घाटन” होता है जो अभी तक छिपे हुए लग रहे थे।

इतने साल तक उसे पकड़ा क्यों नहीं गया?

क़ानून की नाक के नीचे ये घिनौने अपराध कैसे होते रहे?

एप्सटीन की मौत के बाद भी उसका नेटवर्क ज़िन्दा कैसे रहा?

इन सवालों का जवाब किसी षड्यन्त्र सिद्धान्त में नहीं है। यह तो पूँजीवाद की साफ-सुथरी और सामान्य कार्यप्रणाली है।

राज्यसत्ता, उसके क़ानून, उस क़ानून के रखवाले दिखने में तटस्थ लग सकते हैं। हम सुनते हैं कि क़ानून की नज़र में सब बराबर हैं। कम से कम पश्चिमी देशों के लिये तो यह बात लिबरल तबके के लोग पूरे विश्वास के साथ मानते हैं। लेकिन यह भ्रम इस तरह के काण्ड आते ही भरभरा कर बिखर जाता है। राज्यसत्ता पूँजीपति वर्ग की संगठन शक्ति या सही-सही कहें तो उसकी प्रबन्धन समिति होती है।

कहते हैं कि Justice delayed is justice denied। न्याय तो दशकों से नकारा ही जा रहा था, अभी ‘फ़ाइल’ खुलने के बाद भी या तो महज़ राजनीतिक चटकारे लग रहे हैं या फिर नैतिक उपदेश।

कुछ लोगों का कहना है कि यह राज्य और क़ानून की असफलता है। लेकिन असल में यह राज्य और क़ानून की सफलता है कि वह इतने वर्ष तक अपने प्रभु वर्ग की और उसके वर्ग हितों की रक्षा करने में सफल रहा है।

अब चूँकि पब्लिक डोमेन में सभी अपराधियों के नाम आ रहे हैं लेकिन यह भी कोई न्याय नहीं है। नाम आना न्याय मिलना नहीं है। बात यह है कि क्या हम यह समझ पा रहे हैं कि इस तरह के काण्ड पूँजीवाद में आम हैं, भले ही वे उजागर हों या फिर परदे के पीछे रहें।

मार्क्स ने बताया था कि पूँजीवाद सिर्फ वस्तुओं को माल नहीं बनाता, वह तमाम सम्बन्धों और यहाँ तक कि मानव के सार तत्व को भी माल बना देता है। ‘एप्सटीन फ़ाइल्स’ के उजागर होने से यही बात साबित होती है कि पूँजीवाद में मानव शरीर, मुख्यतः मेहनतकश वर्ग की स्त्रियों और यहाँ तक की मासूम बच्चियों का शरीर, महज़ श्रम शक्ति के लिए ही शोषित नहीं होता, बल्कि विलासिता की वस्तुओं के तौर पर भी उसका उपभोग किया जाता है। यह पूँजीवाद का वह घिनौना सच है, जिसे महज़ एक साइड इफ़ेक्ट नहीं कहा जा सकता। बल्कि यह तो इसका एक अनिवार्य लक्षण है।

एप्सटीन 2019 में खुद ही फाँसी लगाकर मर चुका है (हालाँकि उसकी आत्महत्या के तथ्य पर भी प्रश्न उठते रहे हैं), लेकिन उसकी मौत से भी कुछ नहीं बदला। पूँजीवाद वही है, पूँजी का संचय वही है, शोषण वही है, सत्ता का चरित्र भी वही है, क़ानून के “लम्बे” हाथ भी वही हैं। अपराधियों को सज़ा ज़रूर मिलनी चाहिए, लेकिन जब तक पूँजीवाद का निर्णायक तौर पर ख़ात्मा नहीं होता तब तक स्थिति में कोई सुधार नहीं आने वाला।

पूँजीवादी व्यवस्था इन्सानी शरीर को माल में बदलती है और फिर उसके उपभोग को नैतिक पतन बताकर पल्ला झाड़ लेती है। ‘एप्सटीन फ़ाइल्स’ किसी एक व्यक्ति या कुछ विकृत प्रवृत्तियों की कहानी नहीं हैं, ये पूँजीवादी व्यवस्था का घृणित चेहरा हैं, जिसमें शोषण, हिंसा और मासूम बच्चियों की देह का उपभोग महज दुर्घटना नहीं हैं, बल्कि ये सामान्य सामाजिक प्रक्रिया बन चुके हैं।

यदि इन काण्डों को हम सिर्फ़ भ्रष्ट व्यक्तियों, गिरे हुए नैतिक मूल्यों या सत्ता के दुरुपयोग तक सीमित कर देंगे, तो हम उसी वैचारिक भ्रम को मज़बूत करेंगे जिसके सहारे यह व्यवस्था स्वयं को पुनरुत्पादित करती है। असली लड़ाई उन वर्ग सम्बन्धों के विरुद्ध है जो ऐसे व्यक्तियों को जन्म देते हैं, उन्हें संरक्षण देते हैं और उनके अपराधों को दशकों तक ‘इम्युनिटी’ प्रदान करते हैं।

यौन शोषण, हिंसा और स्त्री देह के बाज़ारीकरण को नैतिक विचलन नहीं, बल्कि पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों की अनिवार्य परिणति के रूप में समझने की ज़रूरत है। जब तक पूँजीवाद मौजूद है, तब तक एप्सटीन जैसे नाम बदल-बदल कर आते रहेंगे। सवाल नामों का है ही नहीं, बल्कि व्यवस्था का है। और जवाब उस इंक़लाब में निहित है जब मेहनतकश मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में पूँजीवाद का ख़ात्मा कर दिया जायेगा।

## तिरछी नज़र

### राजेन्द्र धोड़पकर के दो कार्टून

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016